देखने की राजनीति

भारत का झंडा और आस्था की नज़र

सदन झा
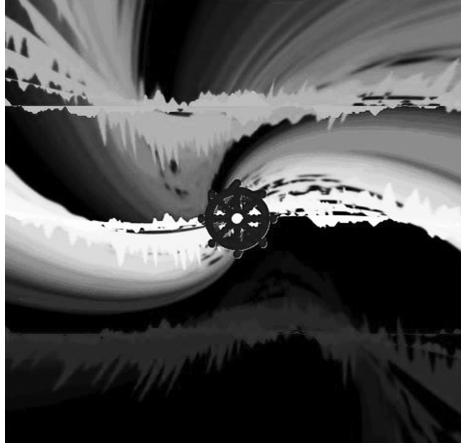
कोई भी व्यक्ति जो किसी सार्वजनिक स्थान पर या किसी भी ऐसे स्थान पर जो सार्वजनिक रूप से दृष्टिगोचर हो, भारतीय राष्ट्रीय ध्वज या भारत के संविधान या उसके किसी भाग को जलाता है, विकृत करता है, विरूपित करता है, दूषित करता है, कुरूपित करता है, कुचलता है या अन्यथा (मौखिक या लिखित शब्दों में अथवा कृत्यों द्वारा) अपमान करता है उसे तीन वर्ष तक के कारावास से, या जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जायेगा ...

स्पष्टीकरण : भारतीय राष्ट्रीय ध्वज की अभिव्यक्ति में कोई भी तस्वीर, पेंटिंग, ड्राइंग या फोटोग्राफ़ या भारतीय राष्ट्रीय झंडे या उसके किसी भाग या भागों का अन्य स्पष्ट चित्रण जो किसी पदार्थ का बना हो या पदार्थ पर दर्शाया गया हो, शामिल है।

भारतीय झंडा संहिता 2002[1]

यह 1918 की बात है। महात्मा गाँधी ने पैट्रिक गेडिस, जो उस समय बॉम्बे स्कूल ऑफ़ इकनॉमिक्स के निदेशक थे, को लिखे ख़त में भीड़ के बारे में एक दिलचस्प बात लिखी। महात्मा गाँधी ने लिखा कि उन्होंने पंडाल में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन के बजाय सुबह-सुबह मैदान में जनता को सम्बोधित करने का फैसला लिया। गाँधी का ख़याल था कि यही तरीक़ा भारतीय भी है और सबसे बेहतर भी है। गाँधी का कहना था : मुझे नहीं पता कि सभागार

---

[1] राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम 1971 (राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण (संशोधित) अधिनियम 2003 द्वारा संशोधित) *भारतीय झंडा संहिता 2002* में उल्लिखित. http://mha.nic.in/pdfs_jhanda-hindi.pdf 29 जून, 2012 को देखा गया.

(एम्पीथियेटर) ने इस मामले में कितनी प्रगति की है। पर मेरे लिए आदर्श स्थिति है किसी पेड़ के नीचे भीड़ को सम्बोधित करना। मुझे परवाह नहीं कि मेरी आवाज़ लाखों या हज़ारों तक भी न पहुँचे। वे मुझे सुनने नहीं, देखने आते हैं।[2]

पैट्रिक गेडिस को भारतीय शहरों की योजना में आमूल बदलाव लाने का श्रेय जाता है। बीसवीं सदी के भारतीय शहरों पर कोई चर्चा उनके नियोजन का ज़िक्र किये बग़ैर नहीं हो सकती है। लेकिन यहाँ मैं उनसे या उनके काम से मुख़ातिब नहीं हूँ। यहाँ मैं महात्मा गाँधी के बारे में भी लिखने नहीं जा रहा। मेरे लिए तो गाँधी का यह ख़त बहुत मानीख़ेज़ है, क्योंकि यह हमें महात्मा के भीड़ के प्रति नज़रिये की ओर तो ले ही जाता है, पर साथ में उससे भी आगे बढ़ कर बताता है कि गाँधी के लिए देखने की बात कितनी अहम थी। जो शख़्स अपने शब्दों और उनके अर्थों के प्रति अत्यधिक चौकस था, उसकी क़लम से यह जानना सोचने पर मजबूर कर देता है कि लोग उन्हें सुनने नहीं देखने आते थे। ज़ाहिर है कि महात्मा में देखने और लोगों द्वारा देखे जाने आकांक्षा थी। लेकिन यहाँ मैं इसको प्रमाणित या खंडित करने के लिए प्रमाणों की पैमाइश नहीं करूँगा, भले ही ऐसा करना दिलचस्प हो। एक तरीक़ा यह भी हो सकता है कि इस ख़त को उसके ऐतिहासिक संदर्भों में रख कर उसकी राजनीतिक हैसियत की पड़ताल हो। लेकिन यह सब फिर कभी। यहाँ तो मैं इस देखने की अहमियत की चर्चा करना चाहता हूँ। देखना जो इस ख़त के मूल में है, देखना जो एक क्रिया है । सवाल यह है कि समाजशास्त्रीय तरीक़े से देखना हमें कहाँ ले जाता है? क्या देखने का समाज-विज्ञान हो सकता है? यदि हाँ, तो उसका स्वरूप क या होगा? किस तरह के सवाल यहाँ हमसे रूबरू हैं?

आधुनिकता से पहले ज्ञान और अनुभव दोनों की सत्ता हुआ करती थी। लेकिन आधुनिक विज्ञान के आविर्भाव के साथ ही अनुभव की अपनी शख़्सियत जाती रही। अनुभव अब महज़ विज्ञान का एक स्रोत बन कर रह गया। विज्ञान ने अनुभव को निरीक्षण में तब्दील कर दिया।

सुनने और चलने की तरह देखना भी एक क्रिया है। समाज-विज्ञान में हम इनके बारे में बात नहीं करते। अधिक से अधिक ये हमारे उदाहरणों का हिस्सा बनते हैं। आज भी समाज-विज्ञान में, ख़ास कर भारत में, विचारधाराओं का ही बोलबाला है। इस बात के कोई प्रमाण या अध्ययन मौजूद नहीं हैं लेकिन अनुमान से भी कहा जाय तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारतीय समाज-विज्ञान में विचारधाराओं के प्रभुत्व ने राजनीति के प्रति हमारी समझ भले ही पैनी की हो लेकिन ज्ञान और मीमांसा को स्थूल ही बनाया है। दूसरी ओर सौंदर्यशास्त्र और कला-विमर्श जैसे क्षेत्र हैं जहाँ रूप और आकार के इर्द-गिर्द ताने-बाने बुने जाते हैं। विद्वानों ने इन दोनों के बीच की खाई पाटने का भी काम किया है, जो हमारे सामने कला के समाजशास्त्र या कला के सामजिक इतिहास के रूप में आता है। लेकिन इनमें देखना, जो एक क्रिया है, जो एक अनुभव है, सिरे से नदारद है। सवाल महज़ देखने का ही नहीं है। यदि इतालवी चिंतक जिओर्जियो आगम्बेन जिनसे मैं सहमत भी हूँ, की मानें तो आधुनिकता के विमर्श में अनुभव सिरे से ग़ायब है। यहाँ मैं, आगम्बेन की तरह अनुभव और ज्ञान के बीच के फ़र्क़ की तरफ़ ध्यान खींचना चाहूँगा। यूरोपीय बौद्धिक परम्परा के हवाले से आगम्बेन का कहना है कि आधुनिकता से पहले ज्ञान और अनुभव दोनों की सत्ता हुआ करती थी। लेकिन आधुनिक विज्ञान के आविर्भाव के साथ ही अनुभव की अपनी शख़्सियत जाती रही। अनुभव अब

---

[2] महात्मा गाँधी (1918), 'लेटर टु पैट्रिक गेडिस', 12 अप्रैल, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी*, खण्ड 14, पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली : 331-332.

महज़ विज्ञान का एक स्रोत बन कर रह गया।[3] विज्ञान ने अनुभव को निरीक्षण में तब्दील कर दिया। प्रयोगशाला के नियंत्रित वातावरण में किया गया ऐसा निरीक्षण जो कार्य-कारण के गणित से निरूपित हो। समाज-विज्ञान में समाज को इसी प्रयोगशाला के कमरे का विस्तार माना गया। वही अनुभव काम के रह गये जो समान परिस्थितियों में फिर से उत्पन्न हो सकें। ऐसे अनुभव, जहाँ देह और मन, दैवीय और भौतिक सब एकमेक हो गये हों, अनुभवों की वैधता का एकमात्र मानक रह गये। यह अनुभवों के साक्ष्य में तब्दील हो जाने का इतिहास है।

इस तरह निरीक्षण के रूप में देखने की क्रिया ज्ञान के केंद्र में आ गयी। सुनी हुई बातों से या फिर ज्ञान के दूसरे माध्यमों के बरक्स आँखों देखा हाल अधिक वैध हो गया। देखना यहाँ अनिवार्यत: आँखों की क्रिया के अर्थ में सिमटा रहा। आँखों को जहाँ एक ओर ज्ञान-प्राप्ति के सबसे अहम ज़रिये के रूप में जगह मिली, दूसरी इंद्रियों के बनिस्बत तरजीह मिली, वहीं देखने की क्रिया का क्षेत्र सिमट गया।

इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि धार्मिकता, विश्वास और जीवन-पद्धति के वे तमाम पहलू, जो विज्ञान, आधुनिकता या रैशनल विचार पद्धति के दायरे से बाहर थे, अंधविश्वास, अज्ञानता और पिछड़ेपन के तहत डाल दिये गये, और इस तरह उन्हें इतिहास, साक्ष्य और विज्ञान के दायरे से बाहर कर दिया गया।[4] इसका देखने की क्रिया और उसके इतिहास पर भी अहम प्रभाव पड़ा और राजनीति भी इससे प्रभावित हुई।

स्वत्रंत भारत में भारत के राष्ट्रीय ध्वज पर केंद्रित मेरा यह निबंध देखने की इसी राजनीति की पड़ताल करता है। झंडे से जुड़े दिशा-निर्देशों और अदालती मुक़दमों के अध्ययन द्वारा मैं यहाँ क़ानून की भाषा और राज्य की भाषा में राज्य के प्रतीक की धार्मिकता और पवित्रता को लेकर की गयी चिंताओं को समझाने का यत्न करूँगा। हाल के समय में समाज विज्ञान में दृश्य-संस्कृति को लेकर रुझान बहुत बढ़े हैं और सत्तर के दशक (जिसे समाज विज्ञान में भाषाई मोड़ के लिए जाना जाता है) की तर्ज़ पर अब समाज विज्ञान में पिक्टोरियल टर्न की बातें कही जा रही हैं। दृश्य-संस्कृति के अध्येता लिखित दस्तावेज़ों को तस्वीरों और अन्य दिखाये जाने वाले साक्ष्यों से बदलने पर आतुर हैं। ऐसे में यह लेख देखने की राजनीति को तस्वीरों के इतिहास से परे ले जाने का प्रयास करता है।

लेकिन आगे बढ़ने से पहले यह ताक़ीद कर देना ज़रूरी है कि मेरी मंशा यहाँ राष्ट्रवाद पर लिखने की कतई नहीं है। राष्ट्र और राष्ट्रवाद पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है और वह विमर्श बहुत समृद्ध भी है। मैं यहाँ अपने विचारों को राष्ट्र के एक प्रतीक तिरंगे झंडे तक ही सीमित रखूँगा। पाठकों को मेरी इस बात से कुछ उलझन हो सकती है। यह सवाल सहज ही ज़ेहन में आयेगा कि क्या झंडे के बारे में चर्चा करना राष्ट्र या राष्ट्रवाद की परिधि से बाहर हो सकता है? मैं इस सहज से लगते

---

[3] आगम्बेन लिखते हैं कि अनुभव का ज्ञान से अलग वजूद हमारे लिए इतना अनजान हो चुका है कि हम भूल जाते हैं कि आधुनिक विज्ञान के जन्म तक विज्ञान और अनुभव दोनों का अपना-अपना स्थान था. प्राचीन काल में ज्ञान का मूल प्रश्न तथ्य (ऑब्जेक्ट) और विषय (सब्जेक्ट) के बीच का संबंध नहीं, वरन एक और अनेक के बीच का रिश्ता हुआ करता था. निश्चितता की खोज में विज्ञान ने ज्ञान और अनुभव के बीच की दूरी को पाट दिया और अनुभव ज्ञान का एक जरिया बन कर रह गया। देखें, जियोर्जियो आगम्बेन (1993), *इंफेंसी ऐंड हिस्ट्री : एसेज़ ऑन द डिस्ट्रक्शन ऑफ़ एक्सपीरियेंस*, अनुवाद, लीज हेरोन, वर्सो, लन्दन और न्यूयॉर्क :18-19.

[4] इस विषय पर उम्दा और अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण अध्ययनों के लिए देखें, रणजीत गुहा, (1983), 'द प्रोज़ ऑफ़ काउंटर इंसरजेंसी', रणजीत गुहा (सम्पा.) *सबाल्टर्न स्टडीज़ II*,ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली : 1-42; यहाँ मैं गुहा द्वारा संथाल विद्रोह के दस्तावेज़ों और उस विषय पर हुए ऐतिहासिक अध्ययनों में धार्मिकता की चर्चा की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ. इस चर्चा में बिरसा, सीदू और कानू की देह की दैवीयता और इस दैवीयता को देखने के विभिन्न वृत्तों की ओर ध्यान खींचना चाहता हूँ. इस मुद्दे को दीपेश चक्रवर्ती ने बेहद रोचक तरीके से आगे बढ़ाया है. देखें, दीपेश चक्रवर्ती (2000), *प्रोविंशियलाइज़िंग यूरोप : पोस्टकोलोनियल थॉट ऐंड हिस्टोरिकल डिफरेंस*, प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन और ऑक्सफ़र्ड : 14-16 और 102-106.

सवाल को उलट कर पूछना चाहता हूँ कि क्या राष्ट्र के किसी प्रतीक (चाहे वह तिरंगे झंडे जितना अहम ही क्यों न हो) के बारे में जाँच-पड़ताल करना अनिवार्यत: राष्ट्र और राष्ट्रवाद के विमर्श का हिस्सा बन जाना है ? इस सवाल के पीछे मेरी मंशा साफ़ है। मैं राष्ट्र और उसके प्रतीक के बीच फ़र्क़ करना चाहता हूँ। दोनों के बीच का यह फ़ासला किसी विषय-वस्तु और उसका प्रतिनिधित्व करने वाले बिम्ब, संकेत या चिह्न के बीच का आम सा दिखने वाला अंतर है। अर्थात राष्ट्र का मतलब उसके संकेत चिह्न नहीं हैं। पलट कर कहें तो राष्ट्रीय ध्वज का मतलब राष्ट्र नहीं है। झंडे के इतिहास का अर्थ राष्ट्र का इतिहास नहीं है।

प्रतिनिधि, प्रतीक या संकेत चिह्न और उनकी विषयवस्तु के बीच का यह फ़ासला जितना आसान दिखता है उतनी ही सुलभता से विद्वानों द्वारा भुला भी दिया जाता है। यही कारण है कि जब लोग खादी या फिर चरखे की बात करते हैं तो अमूमन महात्मा गाँधी और गाँधीवाद पर ही जाकर उनकी गाड़ी रुकती है। यह किसी के ज़ेहन में नहीं आता कि चरखा महात्मा गाँधी ने ईज़ाद नहीं किया था और न ही खादी गाँधीवादियों के बीच ही सीमित रही है। आज खादी भ्रष्टाचार, सादगी और अभिजात सौंदर्य, तीनों का एक ही साथ प्रतिनिधित्व कर रही है। राष्ट्रीय झंडे के संबंध में तो राष्ट्र और उसके प्रतीक के बीच का फ़ासला और भी आसानी से नज़रअंदाज कर दिया जाता है। कुछ तो झंडे की अंग्रेज़ विरोधी क्रांतिकारी विरासत के कारण, और कुछ राष्ट्रवाद के इतिहास की दूधिया चमक के चलते।

यही कारण है कि भारतीय झंडे का इतिहास प्राय: भारतीय राष्ट्रवाद से संबंधित इतिहास की मुख्यधारा, राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के सरोकारों, सवालों और साक्ष्यों की समझ पर ही आधारित रहा है। लेफ्टिनेंट कमांडर के.वी. सिंह की अहम क़िताब *हमारा राष्ट्रीय ध्वज* एक ऐसा ही उदाहरण है।[5] यह किताब भारतीय परम्परा, रजवाड़ों और धार्मिक साहित्य में उल्लिखित झंडों और पताकाओं की भूमिका देते हुए सिलसिलेवार रूप से सन 1857 के आंदोलन से भारतीय तिरंगे के इतिहास का आरम्भ करती है और स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ इस इतिहास का अंत। भारतीय झंडे का इतिहास अर्थात भारत में अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध हुए स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास। इस किताब से पहले भी झंडे के संबंध में बहुत कुछ लिखा गया, जिनका ज़िक्र करना यहाँ ज़रूरी नहीं है, लेकिन इस साहित्य के प्रति यह कह देना अनुचित नहीं होगा कि इसमें विमर्श का रुझान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विमर्श की मुख्यधारा से ही आच्छादित दिखता है।

हाल ही में भारतीय झंडे के इतिहास को अरुंधती विरमानी ने बहुत विस्तार और पेशेवराना तरीक़े से लिखा है।[6] लेकिन विरमानी का इतिहास इसी मुख्यधारा के एक अंग के रूप में ही सामने आता है। उनका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय झंडे के इतिहास द्वारा भारतीय राष्ट्र के निर्माण के सांस्कृतिक इतिहास में योगदान करना है। उनका मानना है कि भारत जैसे धार्मिक, भाषाई और साम्प्रदायिक तौर पर विभाजित राष्ट्र में झंडे ने परस्पर मिलन की एक मुश्तरका ज़मीन और सभी भारतीयों के लिए (चाहे वे किसी भी जाति, सम्प्रदाय, वर्ग और आयु के ही क्यों न हों) एक राजनीतिक व्याकरण मुहैया कराने का

---

[5] देखें, लेफ्टिनेंट कर्नल के.वी. सिंह (1991), *अवर नैशनल फ़्लैग,* पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

[6] देखें, अरुंधती विरमानी (2008), *अ नैशनल फ़्लैग फार इण्डिया : रिचुअल्स, नैशनलिज़्म, ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ सेंटिमेंट,* परमानेंट ब्लेक, रानीखेत; इनके ही एक पहले के लेख के लिए देखें, अरुंधती विरमानी (1999), 'नैशनल सिम्बल्स अंडर कोलोनियल डोमिनैशन द नैशनलाइज़ेशन ऑफ़ द इंडियन फ़्लैग मार्च-अगस्त 1923', *पास्ट ऐंड प्रेज़ेंट,* अंक 164; भारतीय झंडे पर एक भिन्न नज़रिये से लिखे लेख के लिए देखें, श्रीरूपा राय, (2006), 'ए सिम्बल ऑफ़ फ्रीडम : द इंडियन नैशनल फ़्लैग ऐंड द ट्रांसफर्मेशन ऑफ़ नैशनलिज़्म : 1906-2002', द *जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडीज़,* खण्ड 65, अंक 3.

काम किया है। झंडे ने राजनीतिक उन्माद को संयमित करने का अद्‌भुत तरीक़ा सुझाया है। यहाँ झंडा भारतीय राष्ट्रवाद के बहुधा गिनाये गये मूल्यों, सेकुलरिज़्म और अनेकता में एकता का वाहक नज़र आता है। राष्ट्र, राष्ट्रवाद और झंडा तीनों ही इस इतिहास में इस तरह एकमेक हैं कि एक को दूसरे से आसानी से बदला जा सकता है। यहाँ झंडे का इतिहास पहले से ही राष्ट्रीय हो चुका है।

इस समीकरण से परे जा कर और नये साक्ष्यों एवं नये क्षेत्रों में झंडे का इतिहास लिखने की ज़रूरत के तहत मैंने क़ानून के दायरे में झंडे के तयशुदा विमर्श को खँगालने की कोशिश की है।

I

22 जुलाई, 1947 को भारत की संविधान सभा ने भारत के राष्ट्रीय झंडे का स्वरूप सर्वसम्मति से पारित किया। इसे पारित करते समय हुई बहस और उससे पहले का झंडा संबंधी इतिहास दिलचस्प है। इस बहस ने और इस इतिहास ने झंडे के अर्थ, उसके रंग और रूप के मायने, उसकी धर्मनिरपेक्ष अपेक्षाओं और ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ संघर्ष में झंडे की भूमिका तय की। यह एक दिलचस्प और सम्भावनाओं से भरा इतिहास है। लेकिन यहाँ उस तरफ़ लौटना मेरे लिए न तो सम्भव है और न ही वांछित। यहाँ मैं 22 जुलाई, 1947 के बाद के इतिहास की बात करना चाहूँगा, वह भी कुछ ख़ास मुद्दों के इर्द-गिर्द।

इस बात से शुरुआत की जा सकती है कि संविधान सभा से बाहर नये झंडे के प्रारूप को लेकर एक राय नहीं थी। महात्मा गाँधी झंडे से चरखे की आकृति हटाये जाने से ख़फ़ा थे। उन्होंने यह तक कह दिया था कि यदि भारतीय संघ के झंडे में चरखे का प्रतीक नहीं होगा तो मैं उसे सलाम करने से इनकार कर दूँगा। उनका कहना था कि यदि हम चरखे को नज़रअंदाज़ करते हैं तो हम ऐसे आदमी का आचरण कर रहे होंगे जो दु:ख में तो भगवान को याद करता है लेकिन जब वही भगवान ख़ुशियाँ देते हैं तो उन्हें भूल जाता है। महात्मा चरखा संघ के पास पड़े हुए दो लाख पुराने तिरंगे झंडों को लेकर भी चिंतित थे। चरखा संघ ग़रीबों की संस्था थी और गाँधीजी उसके अध्यक्ष। उनके लिए यह भी समस्या थी कि इन पुराने झंडों का क्या होगा।[7] ख़ैर गाँधीजी धीरे-धीरे मान गये या फिर इस मुद्दे पर बहस करना उन्होंने छोड़ दिया।

गाँधी झंडे से चरखे की आकृति हटाये जाने से ख़फ़ा थे। उन्होंने यह तक कह दिया था कि यदि भारतीय संघ के झंडे में चरखे का प्रतीक नहीं होगा तो मैं उसे सलाम करने से इनकार कर दूँगा। उनका कहना था कि यदि हम चरखे को नज़रअंदाज़ करते हैं तो हम ऐसे आदमी का आचरण कर रहे होंगे जो दु:ख में तो भगवान को याद करता है लेकिन जब वही भगवान ख़ुशियाँ देते हैं तो उन्हें भूल जाता है।

सड़क पर हो रहे छिटपुट विरोध की भी बहुत विस्तार से मैं यहाँ चर्चा नहीं करूँगा।[8] विभिन्न राजनीतिक दलों ने भी विरोध जताया लेकिन वे कुछ करने में या तो असमर्थ थे या फिर संविधान सभा के गणित में उनकी बातें अनसुनी रह गयीं।[9] चरखे को नये झंडे से हटाये जाने की सावरकर ने

---

[7] देखें, सदन झा (2008), 'द इंडियन नैशनल फ्लैग : अ साइट ऑफ़ डेली प्लेबिसाइट', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 43, अंक 43:103-111.

[8] संविधान सभा में चर्चा करते हुए सेठ गोविंद दास ने दिल्ली के एक ऐसे ही विरोध का जिक्र किया. देखें, *द कांस्टीट्युटेंट एसेम्बली ऑफ़ इंडिया डिबेट्स (प्रोसीडिंग्स)*, अंक 4, 22 जुलाई 1947, http://parliamentofindia.nic.in/ls/debates/vol4p14.htm; 28 अक्टूबर 2010 को देखा गया.

[9] वी.डी. सावरकर ने बी.आर. आम्बेडकर, राजेंद्र प्रसाद, सरदार बल्लभ भाई पटेल और एन.वी. खरे को टेलिग्राम भेज कर लिखा : 'हिन्दुस्थान की पताका भगवे-गेरुए रंग की ही होनी चाहिए। कोई भी ध्वज, जिसमें भगवे रंग की कम से कम

प्रशंसा भी की। उनके अनुसार इस काम ने नये झंडे की अस्वीकृति को बहुत कम कर दिया। उनके विचार में भारत का संघ और संविधान सभा ब्रिटिश इच्छाओं के उत्पाद थे, न कि जनमत आधारित राष्ट्र के स्वतंत्र अभिमत के। इसी कारण उन्होंने नये झंडे को हिंदुस्थान का राष्ट्रीय झंडा मानने से भी इनकार कर दिया। वे कुण्डलिनी और कृपाण अंकित भगवा ध्वज के अलावा किसी भी दूसरे झंडे के लिए तैयार नहीं थे।[10]

दरअसल, सावरकर और महाराष्ट्र के हिंदू राष्ट्रवादियों के एक गुट ने भगवा झंडे के पक्ष में पुरज़ोर मेहनत की थी। महाराष्ट्र के कुछ नेता और बम्बई प्रोविंशियल हिंदू महासभा के कुछ सदस्य इस सिलसिले में डा. आम्बेडकर से भी 3 जुलाई 1947 को बम्बई में मिले। आम्बेडकर उस झंडा कमेटी के सदस्य भी थे जिसे नये राष्ट्र के झंडे के स्वरूप पर विचार कर संविधान सभा के समक्ष पेश करना था। आम्बेडकर के जीवनीकार धनंजय कीर के अनुसार आम्बेडकर इस गुट के सामने इस बात पर राज़ी भी हो गये कि यदि समुचित दबाव और प्रदर्शन हो तो वे गेरुए झंडे के पक्ष में समर्थन देंगे। दिल्ली रवाना होते समय उन्हें एक गेरुआ झंडा भी भेंट किया गया। हालाँकि वे जल्दी ही इस वायदे से मुकर गये। हँस कर उन्होंने एस. के. बोले, अनंत राव गाडरे और दूसरों से कहा कि क्या ये लोग एक महार के बेटे से संविधान सभा पर गेरुआ झंडा फहराने की आशा कर रहे थे।[11]

झंडे की यह राजनीति रोचक है, लेकिन यहाँ मैं इसकी पड़ताल नहीं करना चाहता।[12] मैं संविधान सभा के इस अनुमोदन से निकले एक दूसरे सिरे को लेकर आगे बढ़ना चाहता हूँ, क्योंकि वह हमें व्यापक फलक यानी राजनीति और सार्वजनिक जीवन में धार्मिकता की उपस्थिति के सवाल की ओर ले जाता है। यही है वह सिक्का जिसका दूसरा पहलू आधुनिक राज्य द्वारा इस धार्मिकता की उपस्थिति के ख़ात्मे या उसे संयोजित करने की इच्छा है। हम इस लेख में देखेंगे कि एक स्तर पर यह इच्छा विज्ञान की भाषा (जो राजकाज चलाने के कौशल के लिए अपरिहार्य है) और धार्मिकता के जरिये जन्मे बेढब और खुले अनुभव के बीच के संघर्ष के आस-पास घूमती है। एक दूसरे स्तर पर यह झंडे को पवित्र मानने वाले के मन में उस धार्मिकता को पुन:रिभाषित करने जैसी है जिसे झंडे में अनिवार्यत: समाविष्ट माना जाता है। यह लेख स्वातंत्र्योत्तर भारत में धार्मिकता और राज्य की भाषा के बीच होने वाले इस खेल को देखने के अनुशासन की इसी इच्छा पर केंद्रित है। भारतीय राजनीति और सार्वजानिक जीवन में धार्मिकता का सवाल अनेक तरीक़े से परखा गया है। इसमें सबसे प्रखर धारा सेकुलरवाद और साम्प्रदायिकता के मुद्दे को लेकर किये गये अध्ययन हैं।[13] लेकिन इस विमर्श से

एक पट्टी न हो, उसे हिंदू आदर से नहीं देख सकेंगे. चरखे को भी निश्चित तौर पर चक्र-धुरी से या ऐसे ही किसी प्रतीक से स्थानांतरित किया जाय जो विकास और शक्ति का सूचक हो।' देखें, 'नॉट चरखा बट चक्र ऐंड अ भगवा स्ट्रिप (7/7/1947)' (1967), *हिस्टोरिक स्टेटमेंट्स,* एस.एस. सावरकर वी.डी. सावरकर के लिए, कर्नाटक प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई,: 125; http://www.savarkar.org/content/pdfs/n/historic-statements-by-savarkar.v001.pdf 22 अक्टूबर 2010 को देखा गया.

[10] वही : 127.

[11] धनंजय कीर, (1990), *डा. आम्बेडकर : लाइफ ऐंड मिशन,* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई : 394-5.

[12] गैर-कांग्रेसी नेतागण लम्बे समय तक संविधान सभा द्वारा अनुमोदित झंडे के राष्ट्रीय चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगाते रहे. 1977 में जब केंद्र में पहली बार जनता पार्टी के बैनर तले गैर-कांग्रेसी सरकार बनी तो यह मुद्दा जोर-शोर से उठाया गया. राष्ट्रीय झंडे और कांग्रेस पार्टी के झंडे के बीच की समानताओं के आधार पर यह कहा गया कि इससे कांग्रेस पार्टी की जनता के बीच आसानी से एक सकारात्मक छवि मिल जाती है. इससे पहले 1967 में राम मनोहर लोहिया ने भी इस बहस को उठाया था। दिनमान में लेखों की शृंखला प्रकाशित हुई थी. उदाहरण के लिए देखें, 'तिरंगा किसका है?', *दिनमान,* 12-18 फरवरी 1978, दिल्ली :16-17.

[13] सेकुलरिज़्म और साम्प्रदायिकता पर देखें राजीव भार्गव (सम्पा.)(1998), *सेकुलरिज़्म ऐंड इट्स क्रिटिक्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली; पीटर वान डर वीर, (1996), *रिलीजस नैशनलिज़्म : हिंदूज़ ऐंड मुस्लिम्स इन इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड

परे मैं यहाँ कुछ बिखरे हुए अध्ययनों की सहायता से राष्ट्रीय झंडे में समाविष्ट धार्मिकता का इतिहास लिखने का प्रयास करूँगा।

मैं शुरू करना चाहता हूँ चंद ऐसे अध्ययनों के हवाले से जो तुर्की टोपी (फ़ैज़), सिखों की पगड़ी और उनके बिम्बों के संदर्भ में हैं, जिनका ताल्लुक़ सीधे-सीधे पहचान की राजनीति से है। शाहिद अमीन ने अपने आलेख *रिप्रज़ेंटिंग द मुसलमान* में तुर्की टोपी, फ़ैज़ और उस प्रक्रिया के समृद्ध इतिहास की तरफ़ हमारा ध्यान दिलाया है जिसमें एक वस्तु राष्ट्रीय आंदोलन के समय मुसलमान-पहचान की रूढ़ छवि के रूप में उभरती है। इस इतिहास को वे एक सामयिक सवाल के साथ जोड़ते हैं : संदर्भित समूह को रूढ़ छवि में तब्दील किये बिना उनके बीच के अंतर को कैसे उकेरा जा सकता है?[14] कुछ भिन्न तरीक़े से शाहिद अमीन से पहले, राज्य और उसके लोगों के बीच के मतभेदों में यह अंतर स्थापित करते हुए बर्नार्ड कोहेन ने पगड़ी और कपड़े के अध्ययन में वस्तु, मूल्य-बोध और उनके पहचान के प्रतीक में रूपांतरण के ऐसे ही संगम को दिखाया है।[15] इन दोनों ही मामलों में टोपी और पगड़ी को धार्मिक पहचान के रूप में माना और चिह्नित किया गया। कोहेन के अध्ययन में सिख समुदाय के एक सदस्य ने पगड़ी को समुदाय की धार्मिक आस्था का अनिवार्य अंग बताया। यह हमें इसकी पवित्रता की तरफ़ ले जाता है जो धार्मिकता के केंद्र में है।[16] ये दोनों ही विद्वान न केवल उस मूल्य बोध की शिनाख़्त करते हैं जो किसी वस्तु को फ़ेटिश का गुण देता है और इस तरह उन्हें ऐसे नवाज़ता है कि वे अपने उत्पादन (पूँजी और श्रम) के तर्क को लाँघ सकें, बल्कि साथ ही उनके अपने समुदाय की छवि (तुर्की टोपी के संदर्भ में) और आस्था (पगड़ी) के इतिहास के साथ भी जोड़ता है। मेरे लिए ये दोनों अध्ययन मानीखेज़ हैं, क्योंकि ये हमें महज़ धार्मिकता के दायरों की तरफ़ ही नहीं ले जाते। ज़्यादा अहम यह है कि यहाँ वस्तु का इतिहास उसके बिम्ब हो जाने के इतिहास की प्रक्रिया से उलझा हुआ है। वस्तु और बिम्ब एक दूसरे से आच्छादित हैं और बिम्ब की राजनीति को व्याख्यायित करने का नया नज़रिया देता है। मैं यह दिखाने का प्रयास भी करूँगा कि स्वतंत्रता के बाद राज्य ने राष्ट्रीय झंडे को महज़ एक बिम्ब के रूप में नियंत्रित करने का यत्न नहीं किया है। राज्य की नीतियाँ एक पवित्र वस्तु के रूप में भी झंडे के वितरण और विचरण को नियंत्रित करने की ओर उन्मुख रही हैं।

यूनिविर्सिटी प्रेस, दिल्ली; इस विमर्श से परिचित होते हुए मैंने खास तौर पर आशिस नंदी की संकल्पना से अंतर्दृष्टि ली है जिनका मानना है कि दक्षिण एशिया की बहुत सी संस्कृतियाँ इयत्ता की लचीली परिभाषा के साथ साँसें लेती हैं. यह एक ऐसी जीवन पद्धति है जो आधुनिक राज्य के लिए बेतुकी और अनियोजित है. देखें, आशिस नंदी, (1998) 'दि पॉलिटिक्स ऑव सेकुलरिज़्म ऐंड द रिकवरी ऑफ़ द रिलीजस टॉलरेंस', राजीव भार्गव (सम्पा.) (1998), *सेकुलरिज़्म ऐंड इट्स क्रिटिक्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

[14] शाहिद अमीन (2005), 'रिप्रज़ेंटिंग द मुसलमान : देन ऐंड नाव, नाव ऐंड देन', शैल मायाराम, एम.एस.एस. पांडियन, अजय सकारिया (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़ XII* : मुस्लिम्स, दलित्स ऐंड द फेब्रिकेशंस ऑफ़ द हिस्ट्री, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली, 2005: 1-36. साथ ही देखें, पैट्रीशिया ओबेरॉय, (2002), 'युनिटी इन डायवर्सिटी? डिलेमा ऑफ़ नैशनहुड इन इंडियन कलेंडर आर्ट', सुमति रामस्वामी (सम्पा.), बियांड एक्सपीरिएंस? विज़ुअल प्रेक्टिसिज़ ऐंड आइडियॉलॅजीज़ इन मॉडर्न इंडिया', *कंट्रीब्यूशंस टु इंडियन सोशियोलॅजी,* विशेषांक, 36, अंक 1 और 22: 191-232.

[15] बर्नार्ड कोह्न (2004), *क्लोथ, क्लोथ्स, ऐंड कोलोनियलिज़्म* : द ब्रिटिश इन इण्डिया, *बर्नार्ड कोहेन ओमनीबस,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2004 : 106-162; साथ ही देखें, अर्जुन अप्पादुरै (सम्पा.) (1998), द *सोशल लाइफ ऑफ़ थिंग्स : कमोडिटीज़ इन कल्चरल पर्सपेक्टिव,* कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1986.

[16] धार्मिकता शब्द का इस्तेमाल मैं किसी संगठित धर्म के संदर्भ में नहीं कर रहा हूँ. यह 'रिलीजस' और 'रिलीजियोसिटी' के करीब है. लेकिन मुख्य तौर पर इसका इस्तेमाल ऐसे मूल्य बोध के लिए किया जा रहा है जो अंग्रेजी के सेक्रेड के नज़दीक है.
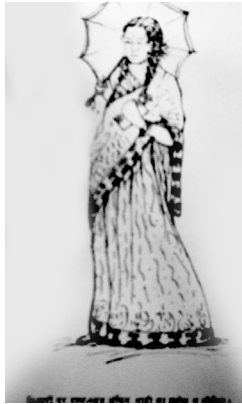
झंडा के उपयोग की सीमाएँ तय करते और उसकी पवित्रता की रक्षा करने के लिए झंडे के साथ क्या नहीं करना चाहिए के संबंध में दिशा-निर्देश देते हुए चित्र। *हमारा राष्ट्रीय ध्वज,* संचालक सूचना विभाग, मध्य भारत शासन, ग्वालियर, 1950

II

यहाँ उत्तर-औपनिवेशिक राज्य के प्रशासनिक तौर तरीक़े और उसके पूर्ववर्ती के बीच एक सीधा संबंध दीखता है। नये भारतीय अभिलेखागार में झंडे से जुड़े बहुत से दस्तावेज़ ऐसे ही नियमनों के बारे में हैं जिनका मुख्य बिंदु अनेक मौक़ों पर सार्वजनिक जगहों पर झंडे के उचित प्रदर्शन से है : जैसे, देशी रियासतों में झंडे के प्रति अवमानना, इन राज्यों में राष्ट्रीय झंडा फहराने के नियम, भारतीय दूतावासों में ख़ास मौक़ों पर झंडा फहराने की सही विधि के बारे में जिज्ञासा, काग़ज़ के झंडे के प्रचार के विरोध में लिया गया निर्णय, नौकरशाहों की मोटर गाड़ियों पर झंडों में फ़र्क़ करने के बारे में और खाने के सामानों के रैपर पर राज्य के चिह्न और राष्ट्रीय झंडे के रंगों के इस्तेमाल की वांछनीयता।[17]

धार्मिकता का दूसरा अर्थग्रहण मैंने अंधविश्वास के नज़रिये से करने की कोशिश की है। यह उन व्यवहारों से ताल्लुक़ रखता है जो आमतौर पर परा-भौतिक और ग़ैर-बुद्धिवादी के रूप में परिभाषित होते हैं। ये ऐसे कारक या हस्तक्षेप हैं जिन्हें किसी भी धर्म के भीतर नहीं समेटा जा सकता। इनकी उपस्थिति सार्वभौमिक होने के साथ-साथ सार्वजानिक जीवन में भी इनकी भूमिका अहम होती है।[18] धार्मिकता का मेरा तीसरा और अंतिम उपयोग भारत में मंदिरों के उस इतिहास से संबंधित है जहाँ वे धार्मिक जगह और धार्मिक संस्था, दोनों ही रूपों में हमारे सामने आते हैं।[19] मैं यह स्थापित करने

---

[17] यहाँ इन सबका ब्योरा देना सम्भव नहीं है. लेकिन नैशनल आर्काइव, दिल्ली के पॉलिटिकल डिपार्टमेंट और मिनिस्ट्री ऑफ़ स्टेट के निम्नलिखित दस्तावेज़ सहायक हो सकते हैं: 1947/4(14)-पी.आर.; 1947/4(8)-पी.आर.(एस); 1947/4(12)- पी.आर.; 1947/120- पी.आर.; 1947/83 पी.आर.; 1947/25-जी; 1947/20(28) पी.आर.; 1952/जी11/8154 (मिनिस्ट्री ऑफ़ एक्सटर्नल अफ़ेयर्स); 1952/जी-II/8152 (मिनिस्ट्री ऑफ़ एक्सटर्नल अफ़ेयर्स); 1952/ जी-II/8155; मेन्युफेक्चर ऑफ़ नैशनल फलेग,1952/ जी-II /8155 पार्ट II; *रेगुलेशंस ऐंड रूल्स रिगार्डिंग द फ्लाईंग ऑफ़ द नैशनल फलेग ऑफ़ इण्डिया,*1952/जी-II /8151; 1952/एन/8151/103; होम/1950/41/6/पब्लिक; होम/1950/ए841/8/पब्लिक (यह युनियन जैक के डिस्पोज़ल के बारे में है); होम/1951/जनरल/24/31/पब्लिक; साथ ही देखें कार्ल फेचिंगेर, एक जर्मन नागरिक द्वारा भारत के झंडा और प्रतीकों के अध्ययन करने में सहायता और अनुमति देने का आवेदन जिसे रद्द कर दिया गया, 1949/14(7) जे (मिनिस्ट्री ऑफ़ स्टेट).

[18] इस विषय पर एक उम्दा लेख के लिए देखें, दीपेश चक्रवर्ती (2008), 'दि पॉवर ऑफ़ सुपरस्टीशन इन पब्लिक लाइफ इन इंडिया', *इक्नॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 43, अंक 20 (17 मई):16-19.

[19] दक्षिण भारत के श्री पार्थसारथी स्वामी मंदिर के अध्ययन में अर्जुन अप्पादुरै ने मंदिर के तीन आवश्यकताओं को रेखांकित किया है. ये हैं एक जगह के रूप में मंदिर या एक धार्मिक जगह जहाँ देव रहते हैं जिनकी सत्ता सर्वोच्च होती है, एक प्रक्रिया
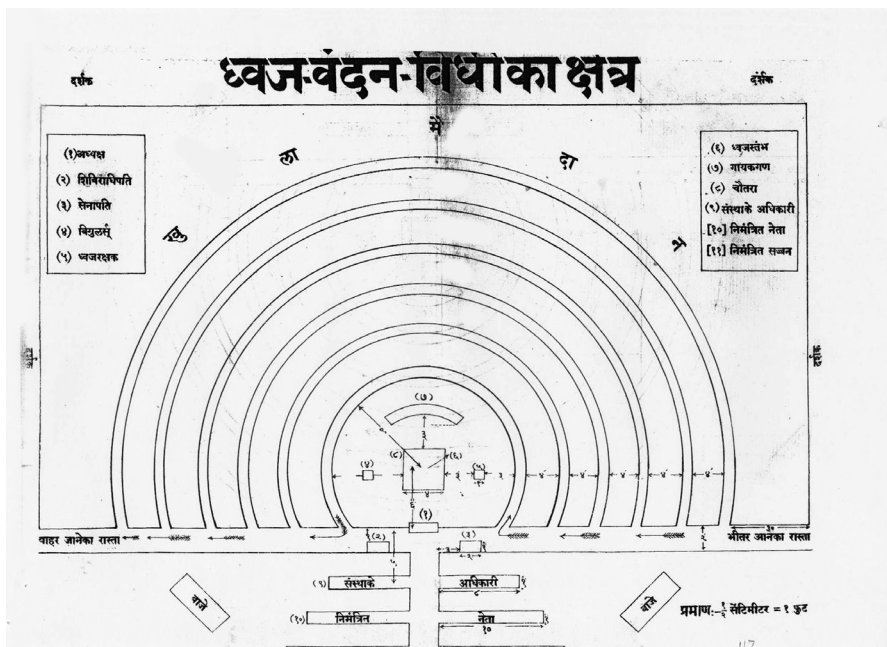
भारत सरकार के दिशा निर्देशों से पहले ही एन.एस. हार्डीकर ने अपनी किताब में झंडोत्तोलन के लिए यह व्यवस्था सुझाई थी।
नैशनल फ़्लैग, (प्रिंटर संबंधित सूचना उपलब्ध नहीं), 1937, ए.आई.सी.सी. पेपर्स, नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम एंड लाइब्रेरी : 117

का प्रयास करूँगा कि राज्य अपने अंगों द्वारा राष्ट्रीय झंडे को एक ऐसी ही संस्था के रूप में देखता है जिसका एक सार्वजानिक चेहरा है, जिसकी सत्ता पवित्र है और जिसकी पवित्रता को ठीक उसी प्रकार नियंत्रित किया जाना चाहिए जिस तरह मंदिर से संबंधित धार्मिकता को नियंत्रित किया जाता है।

धार्मिकता के ये तीन गुण (पवित्रता की धर्म और समुदायगत पहचान, अंधविश्वास का खेल और एक पवित्र जगह का संदर्भ) राष्ट्रीय झंडे का इतिहास समझने का नया नज़रिया देते हैं। ध्यान रहे कि अभी तक यह इतिहास राष्ट्रवाद और देशभक्ति के इतिहास के तौर पर ही लिखा गया है जिसके तहत झंडा धर्मनिरपेक्षता, अनेकता में एकता आदि जैसे राष्ट्र के इच्छित गुणों के वाहक के रूप में ही दर्शाया गया है।[20] मेरे अध्ययन के केंद्र में होगी क़ानूनों, परम्पराओं, निर्देशों और व्यवहारों की एक सूची जिसे *भारतीय झंडा संहिता 2002* का नाम दिया गया है। मैं यह दिखाने का यत्न करूँगा कि यह संहिता ऊपर गिनाये गये तीनों गुणों को सम्बोधित करती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय झंडे का प्रदर्शन प्रॉविज़ंस ऑफ़ द एम्बलम्स ऐंड नेम्स (प्रिवेंशन ऐंड इम्प्रॉपर यूज़) एक्ट, 1950 (नं.12 ऑफ़ 1950) से निर्देशित होने लगा। 1971 में इन नियमों में संशोधन किया गया और इन्हें प्रिवेंशन ऑफ़ इंसल्ट्स टू नैशनल ऑनर एक्ट, 1971 (नं. 69 ऑफ़

के रूप में जहाँ भक्तों और देव के बीच में सतत लेन-देन का पुन: वितरण होता है; और, तीसरे रूप में जो एक प्रतीक या प्रतीकों के ऐसे सिस्टम के रूप में कार्य करता है जो इसे 'मेटा-सोशल' चरित्र प्रदान करता है. उनका कहना है कि ब्रिटिश शासन और उसके उत्तराधिकारी राज्य ने मंदिर नियंत्रण के विचार में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया और मंदिर के मूल अधिकारों को खंडित कर दिया. जहाँ एक ओर देव की आधिकारिक सत्ता कायम रही वहीं व्यवस्था और कार्यविधि से जुड़े नियम अब बदल गये और राज्य के कानून सम्प्रभु हो गये. देखें, अर्जुन अप्पादुरै (1981), *वरशिप ऐंड कंट्रोल अंडर कोलोनियल रूल : अ साउथ इंडियन केस,* ओरियंट लोंगमेन, हैदराबाद.

[20] देखें अरुंधती विरमानी (2008); कर्नल के.वी. सिंह (1991).
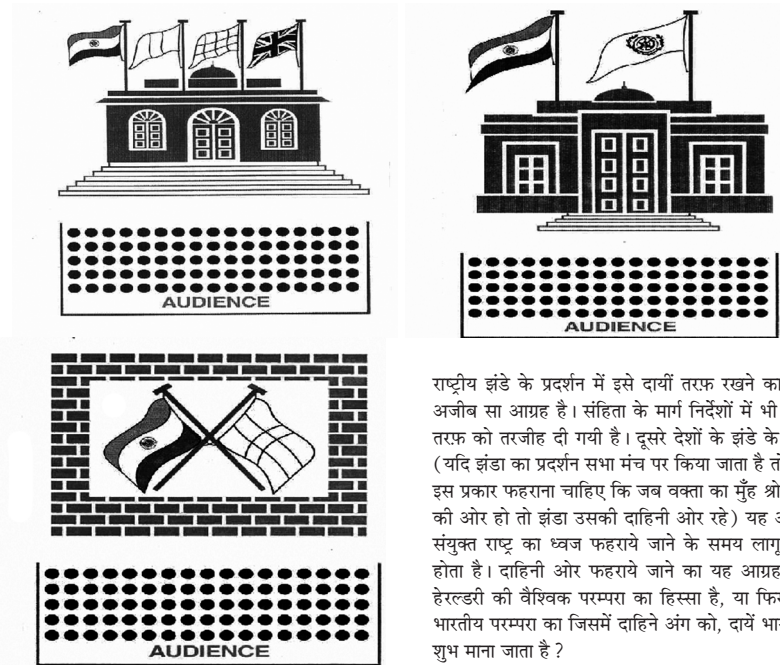
राष्ट्रीय झंडे के प्रदर्शन में इसे दायीं तरफ़ रखने का एक अजीब सा आग्रह है। संहिता के मार्ग निर्देशों में भी दायीं तरफ़ को तरजीह दी गयी है। दूसरे देशों के झंडे के साथ (यदि झंडा का प्रदर्शन सभा मंच पर किया जाता है तो उसे इस प्रकार फहराना चाहिए कि जब वक्ता का मुँह श्रोताओं की ओर हो तो झंडा उसकी दाहिनी ओर रहे) यह आग्रह संयुक्त राष्ट्र का ध्वज फहराये जाने के समय लागू नहीं होता है। दाहिनी ओर फहराये जाने का यह आग्रह क्या हेरल्डरी की वैश्विक परम्परा का हिस्सा है, या फिर उस भारतीय परम्परा का जिसमें दाहिने अंग को, दायें भाग को शुभ माना जाता है?

1971) के नाम से जाना जाने लगा। इनके साथ ही सरकार समय-समय पर बहुत से असंवैधानिक निर्देश भी जारी करती रही। 6 जनवरी 2002 से लागू *भारतीय झंडा संहिता 2002* इन सभी का मिला-जुला लेकिन संशोधित संग्रह कहा जा सकता है जिसने पहले से लागू झंडा संहिता की जगह ले ली है।[21] भारत सरकार ने यह माना कि पहले के नियम प्रॉविज़ंस ऑफ़ द एम्बलम्स ऐंड नेम्स (प्रिवेंशन ऐंड इम्प्रॉपर यूज़) एक्ट, (1950 का अनुच्छेद 3)ने केंद्र सरकार को अधिकार दिये थे कि वह किसी भी सार्वजनिक जगह पर झंडे के प्रदर्शन पर सीमा आरोपित कर सके।[22] भारतीय झंडा संहिता 2002 ने इनमें से अनेक सीमाओं को और झंडा फहराने पर लगी कई पाबंदियों को हटा लिया। इसने घोषित किया कि *आम जनता, ग़ैर-सरकारी संगठनों, और शैक्षणिक संस्थाओं आदि द्वारा राष्ट्रीय झंडे के प्रदर्शन पर कोई प्रतिबंध नहीं होगा* सिवाय सम्प्रतीक और नाम (अनुचित प्रयोग का निवारण) अधिनियम 1950 और राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम 1971 तथा इस विषय पर बनाये गये किसी अन्य क़ानून में बताये गये प्रतिबंध के।[23]

---

21 *भारतीय झंडा संहिता 2002*, पूर्वोक्त, देखें http://mha.nic.in/pdfs_hin/Jhanda-Hindi.pdf; 29-6-2012 को देखा गया. इस संहिता के तीन हिस्से हैं : भाग 1 में झंडे का सामान्य विवरण है, भाग 2 में आम जनता, शैक्षणिक संस्थानों और निजी इकाइयों के द्वारा झंडा फहराए जाने के संबंध में दिशा निर्देश दिये गये हैं और भाग 3 में केंद्र तथा राज्य सरकार तथा उनके मातहत काम करने वाले संगठनों द्वारा झंडा फहराए जाने के निर्देश हैं.

22 युनियन ऑफ़ इंडिया बनाम नवीन जिंदल, सिविल अपील नं. 2920 ऑफ़ 1996 नं. 453 ऑफ़ 2004 के साथ [एस एलपी (सी) नं. 15849 ऑफ़ 1994 से निकला हुआ], 23 जनवरी 2004 को तय किया गया, सुप्रीम कोर्ट केसेज़, 2, 2004, पृ. 510. साथ ही देखें द एम्बलम्स ऐंड नेम्स (प्रिवेंशन ऑफ़ इम्प्रोपर यूज़) एक्ट 1950 [एक्ट नं.12 ऑफ़ 1950], मार्च 1, 1950; देखें, http://www.vakilno1.com/bareacts/Laws/The-Emblems-And-names-Prevention-of-improper-Use-Act-1950.htm, 27-10-2010 को देखा गया.

23 *भारतीय झंडा संहिता 2002,* भाग 00II,धारा I,2.1 (अंग्रेजी के मूल में ही इन शव्दों पर बल है, यहाँ लेखक द्वारा ज़ोर दिया गया है).

भारतीय झंडा संहिता जहाँ प्रतिबंधों को हटाती है वहीं बड़ी सफ़ाई से झंडे का स्वरूप व्याख्यायित करती है। वह तिरंगे के रंगों को परिभाषित करती है : भारतीय केसरी, भारतीय हरे और सफ़ेद रंग के साथ नेवी ब्लू रंग में 24 धारियों वाला अशोक चक्र।[24] यह संहिता सुझाव देती है कि बेहतर होगा यदि अशोक चक्र स्क्रीन से प्रिंट किया हुआ हो अन्यथा उसे छापा हुआ, स्टेंसिल किया हो और जो स्पष्ट रूप से दिखायी देना चाहिए। संहिता ने विभिन्न मानक दिये हैं। यदि इस संहिता को झंडे के भारतीय मानक से जोड़ कर पढ़ा जाए तो सूक्ष्मता और गुणवत्ता के प्रति समरूपता को लेकर भारतीय राज्य का आग्रह और भी उभर कर आता है। इस भारतीय मानक में न केवल मात्र भारतीय केसरिया और बाक़ी रंगों को व्याखायित किया गया है और रंगों के स्पेक्ट्रफ़ोटोमैट्रिक मूल्य 22 जुलाई 1947 को संविधान सभा में पेश किये गये झंडे (जो कानपुर की टेक्निकल डिवेलपमेंट इस्टेब्लिशमेंट लेबोरेटरी ने उस वक़्त तय किये थे) के आधार पर उनके त्रिक्रोमेतिक मूल्य दिये गये हैं, बल्कि बंटिंग के कपड़े के ताने-बाने में सूत की अनुमानित संख्या, भार, मशीन से सिलाई करने के लिए प्रयुक्त सिलाई के धागे की गुणवत्ता, लकड़ी की गुल्ली का विवरण जैसी अनेक सूचनाएँ दी गयी हैं।[25]

भारतीय झंडा संहिता झंडे की मर्यादा के लिए मार्ग दर्शन और हिदायतें देती है जो फहराने के साथ-साथ झंडे के सामने शपथ लेने के, सलामी देने के और स्कूल में झंडोत्तोलन के समय खड़े होने के बारे में भी हैं, ताकि मन से झंडे का सम्मान करने के लिए प्रेरणा दी जा सके। यहाँ हमें बताया गया है कि स्कूल के विद्यार्थी इकट्ठे होकर वर्ग बनाएँगे। इस वर्ग में तीन तरफ़ विद्यार्थी खड़े होंगे और चौथी तरफ़ बीच में झंडा होगा। प्रधानाध्यापक, मुख्य छात्र और झंडे को फहराने वाला व्यक्ति (यदि वह प्रधानाध्यापक के अलावा कोई दूसरा हो) झंडे से तीन क़दम पीछे खड़े होंगे। छात्रों की क़तार में कक्षा का मुख्य छात्र अपनी कक्षा की पहली पंक्ति की दायीं ओर खड़ा होगा। सबसे बड़ी कक्षा सबसे दायीं ओर खड़ी होगी। हर कक्षा के बीच समान फ़ासला होना होगा।[26]

संहिता जहाँ प्रतिबंधों को हटाती है वहीं बड़ी सफ़ाई से झंडे का स्वरूप व्याख्यायित करती है। वह तिरंगे के रंगों को परिभाषित करती है : भारतीय केसरी, भारतीय हरे और सफ़ेद रंग के साथ नेवी ब्लू रंग में 24 धारियों वाला अशोक चक्र।

मेरे लिए सवाल यह है कि इन विस्तृत मार्ग-निर्देशों के और इन सूक्ष्म सूचनाओं के क्या मायने निकलते हैं? इस सूची में जहाँ कुछ व्यवहार झंडे के लिए अपमानजनक माने गये हैं, और जिन्हें प्रतिबंधित किया गया है वहीं कुछ दोषहीन, जिसके लिए नागरिकों को इजाज़त है या फिर यह भी कहा जा सकता है कि ये व्यवहार नागरिक-अधिकार क्षेत्र का हिस्सा हैं। यह सूची समय के साथ बदलती जा रही है। जैसे, 2005 में राष्ट्रीय ध्वज का पहनावे के रूप में, या पहनावे के हिस्से के रूप में ऐसा उपयोग जहाँ वह कमर के नीचे पहना जाय या फिर इसका किसी कुशन, रूमाल या अंत:वस्त्र आदि के रूप में, इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी गयी।[27]

---

[24] गौर तलब हो कि दो रंगों के पीछे भारतीय शब्द लगा है लेकिन तीसरे में नहीं. यह रंगों की राजनीति और इतिहास की तरफ ले जाता है जिस पर चर्चा करना यहाँ मूल उद्देश्य से भटकना होगा और इस लेख की सीमा का अतिक्रमण भी.

[25] *भारत के राष्ट्रीय झंडे (सूती खादी) की विशिष्टि* (दूसरा पुनरीक्षण) (संशोधन सं.1 और 2 समाविष्ट) (1987 में पुन:पुष्ट) यूडीसी 929 9 (540):677,21.064, *भारतीय मानक ब्यूरो,* दिल्ली, मार्च 1991. दिलचस्प है कि भारतीय मानक ने नेवी ब्लू के मूल्यों को अनदेखा कर दिया। साथ ही जहाँ भारतीय झंडा संहिता का अंग्रेजी संस्करण हमेशा ही इंडियन सेफ्रॅन (केसरी) का उपयोग करता है हिंदी में यह संहिता भारतीय केसरी शब्द का उपयोग करता है। मानो इंडियन सेफ्रॅन का अर्थ केसरी है लेकिन दूसरी जगह यही केसरी भारतीय हो जाता है. इंडियन सेफ्रॅन (केसरी) के इतिहास पर विस्तार से चर्चा के लिए देखें, सदन झा (2012).

[26] *भारतीय झंडा संहिता 2002,* धारा II, 2.3.

[27] गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (2005), द प्रिवेंशन ऑफ़ इंसल्ट टु नैशनल ऑनर (अमेंडमेंट) एक्ट 2005; (1971), द प्रिवेंशन ऑफ़ इंसल्ट टु नैशनल ऑनर एक्ट, 1971; (2005), (द प्रिवेंशन ऑफ़ इंसल्ट टु नैशनल ऑनर (अमेंडमेंट) एक्ट 2005

ये निर्देश और कानून हमें धार्मिकता के शासन के गणित की ओर ले जाते हैं। साथ ही ये सूक्ष्मता और स्पष्टता की उस ज़रूरत की ओर ले जाते हैं जो सार्वजनिक जगह में सम्प्रभुता के प्रदर्शन के लिए आधुनिक राज्य की पूर्व-कल्पना है। आइये इस बात को कुछ विस्तार से खँगालें।[28]

जैसा कि मैंने ऊपर ज़िक्र किया कि लम्बे अरसे तक राज्य ने आम नागरिक को झंडे के इस्तेमाल की इजाज़त नहीं दी (या फिर ख़ास तरह से इस्तेमाल तक ही सीमित रखा)। इस तरह राज्य ने आम आदमी और सम्प्रभुता के प्रतीक के बीच फ़ासला बनाये रखा। दूसरे शब्दों में झंडे का सार्वजनिक जगहों पर प्रदर्शन असामान्य/ख़ास घटना बना रहा। यह राज्य के प्रतीक को रोज़मर्रा की चीज़ होने से बचाने जैसा था। नागरिक को महज़ झंडा देखने का अधिकार था, उसे अपना बनाने या अपनाने का नहीं। लेकिन राष्ट्र के प्रतीक के लिए, जो एक दृश्य-प्रतीक हो, जिसके साथ जनता की आकांक्षाएँ, देश की विरासत और इतिहास जुड़ा हो, उसका जनता के बीच परिसंचरण भी आवश्यक था। इसके लिए ज़रूरी था कि कुछ घटनाओं, संस्थाओं, जगहों और कुछ ख़ास व्यक्तियों को झंडा फहराने की, उसके साथ सम्पर्क की, उसे धारण करने की इजाज़त हो, लेकिन एक नागरिक के रूप में नहीं, राज्य के ही एक अंग के रूप में, इसके प्रतिनिधि के रूप में। इस पूरी व्यवस्था में झंडा सभी का था। लेकिन, महज़ एक दृश्य-प्रतीक को देखने भर के लिए। एक वस्तु के रूप में अपनाने के लिए नहीं।

लम्बे अरसे तक राज्य ने आम नागरिक को झंडे के इस्तेमाल की इजाज़त नहीं दी। इस तरह राज्य ने आम आदमी और सम्प्रभुता के प्रतीक के बीच फ़ासला बनाये रखा। दूसरे शब्दों में झंडे का सार्वजनिक जगहों पर प्रदर्शन असामान्य/ख़ास घटना बना रहा।

अंग्रेज़ी हुकूमत के दौरान भी हमें यूनियन जैक के साथ कुछ इसी तरह के सुलूक की मिसाल देखने को मिलती है, जब हम राज्य द्वारा यूनियन जैक के ग़लत इस्तेमाल पर जतायी आपत्तियों से रूबरू होते हैं। साथ ही दूसरा अहम मुद्दा यूनियन जैक के साथ कांग्रेस का झंडा फहराये जाने पर अंग्रेज़ी शासन के क्रोधित हो जाने का भी रहा। लेकिन बीस के दशक में महात्मा गाँधी द्वारा व्यवहृत कांग्रेस का झंडा और 1931 के बाद कांग्रेस का औपचारिक पार्टी झंडा, जिसे एक बड़ा तबक़ा राष्ट्रीय झंडा या आज़ादी के झंडे के रूप में देखता रहा वहाँ न तो झंडे के इस्तेमाल पर बहुत नियंत्रण था, न ही इसको अपनाने पर पाबंदियाँ ही। वहाँ नैतिकता की भाषा एक भिन्न पोशाक में थी। वहाँ हम महात्मा गाँधी को यह वक्तव्य देते पाते हैं : यदि किसी धार्मिक कार्य के सम्पादन के लिए कुँआरियों की ज़रूरत होती है और यदि कुँआरियाँ मौजूद न हों तो किसी और का विकल्प के तौर पर नहीं उपयोग कर सकते हैं। यदि एक कुँआरी भी मिल जाय तो मामला सँभल जाय। यही बात स्वराज के झंडे की स्थापना के साथ भी है। झंडा उन्हीं पाक हाथों से फहराया जायेगा जो इसके प्रति निष्ठावान बने रहे हैं। यहाँ यह फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उनकी संख्या कितनी भी थोड़ी क्यों न हो।[29]

यहाँ महात्मा की भाषा और आधुनिक राज्य की भाषा की तुलना करना मेरा उद्देश्य नहीं है। कुँआरियों का ज़िक्र करके मैं जेंडर के अहम सवाल पर भी लौटना नहीं चाहता। ऐसी बात भी नहीं

द्वारा संशोधित); देखें, http://www.mha.nic.in/pdfs/Prevention_Insults_National_Honour_Act1971.pdf; 27-10-2010 को देखा गया.

[28] *भारतीय झंडा संहिता 2002,* भाग II, खंड I, 2.2V; खंड VII, 3.32, 3.33, 3.34, 3.35 और 3.335 शर्त (क्लाज़).

[29] महात्मा गाँधी, (1966), 'नैशनल एजुकेशन', *यंग इण्डिया,* 3/6/1926, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी,* 30: 519 (मेरा अनुवाद), पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

कि गाँधी झंडे के स्वरूप को लेकर उत्सुक नहीं थे (उन्होंने तो कहा ही था कि कपड़े का हर टुकड़ा झंडा नहीं हो सकता। उसे सुझाये प्रारूप का अनुसरण करना होगा)।[30]

इन उदाहरणों के ज़रिये मैं बुद्धिवाद और पवित्रता के गुणों की तरफ़ ध्यान दिलाना चाहता हूँ जो झंडे की धार्मिकता के निर्माण को संयोजित करते हैं। या आस्था की दृष्टि के बारे में जिसका उपयोग मैं महात्मा गाँधी से उधार लेकर कर रहा हूँ।[31] स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आस्था की यह दृष्टि आमूल रूप से बदल गयी। संविधान सभा और भारतीय राज्य ने इसी के साथ झंडे के योग्य उत्तराधिकारी की योग्यता के मापदंड भी बदल दिये। महात्मा गाँधी की भाषा में आस्था की नज़र देहस्थ आँख है। यह निरीक्षक की आँख नहीं है। 'आस्था की नज़र' देहस्थ रूप से किसी वस्तु को आँख से देखने के अनुभव और उस वस्तु की पवित्रता में देखने वाले की निष्ठा के बीच असम्पृक्त संबंध की बुनियाद पर केंद्रित है। यहाँ देखने की क्रिया एक ऐसा निपट अनुभव है जिसे महज़ आँख की जानकारी के लिहाज़ से अलग करना होगा। यहाँ आँख कोई आधुनिक ज्ञान के निर्माण का ज़रिया नहीं है जिसकी पुष्टि या खंडन हो सके। यह अंतर मेरे लिए अहम है। यह सुझाता है कि संविधान सभा के बाद भी (जब लोग अशोक चक्र को सुदर्शन चक्र के रूप में देखते थे या जब रंगों को धार्मिक अर्थों में मानने का चलन जारी था) झंडे में धार्मिकता की निरंतरता राज्य के आधुनिकतावादी स्वरूप की कमियों का नतीजा नहीं था। यहाँ यह उल्लेख करना लाज़मी हो जाता है कि संविधान सभा में उड़ीसा के लक्ष्मी नारायण साहू ने कहा था कि जब मैं झंडे के इन तीन रंगों को देखता हूँ तो मुझे भगवान जगन्नाथ के मंदिर के भीतर की तीन छवियाँ भी दिखायी देती हैं। भगवान जगन्नाथ नीले रंग के प्रतिनिधि हैं, बलराम श्वेत के और सुभद्रा देवी पीले रंग की।...[32] धार्मिकता, आधुनिकता या राज्य की नीति के रास्ते की बाधा न होकर इसकी संरचना के मूल में है। यह देखने के, कल्पना के, दर्शन के और राष्ट्र, उसके प्रतीक और उसकी जनता के बीच के रिश्तों के उस बहुआयामी रूप से तय होता है, जो सदैव ही राज्य की प्रशासनिक, नियोजनात्मकता और क़ानून की एकवचनीयता के परे जाता है। इस मुद्दे की जटिलता को समझाने के लिए हम वापस लौटेंगे। लेकिन संविधान सभा के ये उदाहरण इस बात को अवश्य रेखांकित करते हैं कि लोगों द्वारा झंडे और उसके रंगों को देखने का कर्मकांड राज्य के कर्मकांड से बहुत भिन्न था।[33]

प्रतीकों और झंडे में रंगों को देखने की जन-संस्कृति और वहाँ धार्मिक भाषा की उपस्थिति हमें देखने की विविधता की ओर ले जाते हैं। दीपेश चक्रवर्ती ने भिन्न संदर्भ में इस मसले पर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि भारत में राष्ट्र महज़ एक कल्पित समुदाय नहीं है। यहाँ लोग राष्ट्र

---

[30] महात्मा गाँधी, (1966), 'गॉड्स विल', *हरिजन,*, 24/4/1940 *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी,* 78: 164 (मेरा अनुवाद), पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

[31] महात्मा गाँधी,(1966), 'नैशनल एजुकेशन', *यंग इण्डिया,* 3/6/1926, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी,* 30: 519 (मेरा अनुवाद), पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

[32] 'मोशन रे नैशनल फ़्लैग', *कांस्टीटुएंट एसेम्बली डिबेट्स (प्रोसीडिंग्स),* IV, 22 जुलाई 1947 : 759. (वही).

[33] दो खास कारणों से राज्य के दिशा-निर्देश मेरे लिए एक किस्म के कर्मकांड हैं. पहले तो इनमें से बहुतेरे निर्देशों का कानूनी स्वरूप विवादास्पद है। देखें, सर्वोच्च न्यायालय का पूर्वोक्त फैसला : युनियन ऑफ़ इंडिया बनाम नवीन जिंदल, पृ. 514. दूसरे, हम यह भी देखते हैं कि बहुतेरे दिशा-निर्देश स्थानीय और प्रशासन के निचले स्तर पर बहुत सख्ती से लागू किए जाते रहे हैं. यह चलन न्यायिक क्षेत्र में भी दिखाई देता है जहाँ सर्वोच्च न्यायालय से पहले लगभग सभी केसों में फैसला राज्य के पक्ष में जाता रहा है। बीजोय इमानुएल ऐंड अदर्स बनाम स्टेट ऑफ़ केरल के मामले में उच्च न्यायालय एक सर्कुलर (एन.एच. 6-47833/69, 18/2/1970) का जिक्र करता है और उसे उचित मानते हुए अपने निर्णय का महत्त्वपूर्ण आधार बनाता है. यह सर्कुलर मानक दिशा निर्देश के रूप में पब्लिक इंस्ट्रक्शंस के निर्देशक द्वारा जारी किया गया था और जिसे एडवोकेट जनरल ने संदर्भ की तरह पेश किया था. यहाँ प्रत्येक स्कूल में सुबह की सभा की अनिवार्यता और इसमें हर छात्र द्वारा राष्ट्रीय गान गाये जाने के बारे में संबंधित निर्देश की बात कही गयी. गौरतलब है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस निर्णय को उलट दिया.

का दर्शन भी करते हैं।[34] 'राष्ट्रीय झंडा संहिता' और 'नैशनल ऑनर एक्ट' दृष्टि के जिस अनुशासन की इच्छा रखता था, उसे देखने की विविधता से भरी समृद्ध संस्कृति की माँगों से तो रूबरू होना ही था। इसलिए जो दमित था वह पचास साल के बाद पुन: प्रकट हुआ।

III

एक बड़े उद्योगपति और सांसद नवीन जिंदल के छह साला मुक़दमे की रोशनी में केंद्र सरकार ने अप्रैल 2001 में आख़िरकर झंडे के फहराने और प्रदर्शन के बारे में उदार रुख अपनाने का निर्णय लिया। इस मामले के लिए गठित शेनॉय कमिटी ने यह सुझाव दिया कि आम आदमी को अपने प्रेम और देश भक्ति की अभिव्यक्ति के तौर पर किसी भी दिन झंडे को फहराने और प्रदर्शन की अनुमति देनी चाहिए।[35]

यह मामला तब शुरू हुआ जब नवीन जिंदल एक कम्पनी के सह प्रबंध निदेशक थे। उन्हें रायगढ़, मध्य प्रदेश में अपने कारख़ाने के अहाते में राष्ट्रीय ध्वज फहराने की अनुमति नहीं दी गयी। प्रशासन का मत था कि भारतीय झंडा संहिता इसकी इजाज़त नहीं देता था। नवीन जिंदल ने इस संबंध में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवेदन देते हुए कहा कि राष्ट्रीय ध्वज को सम्मान और प्रतिष्ठा से फहराना हर नागरिक का मूलभूत अधिकार है। उन्होंने दावा किया कि झंडा संहिता महज़ विधायिका का निर्देश है न कि क़ानून। अत: भारतीय संविधान की धारा 19(2) के संदर्भ में यह उचित पाबंदियों के दायरे का उल्लंघन है।[36] सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फ़ैसले में माना कि राष्ट्रीय झंडे को सम्मान और प्रतिष्ठा से फहराना और उसका प्रदर्शन करना हर नागरिक का मूलभूत अधिकार है और यह संविधान की धारा 19(1) के तात्पर्यों के तहत आता है। अदालत ने भारतीय झंडा संहिता को संविधान की धारा 13(3)(ए) के अर्थों में क़ानून का दर्जा देने से इनकार भी कर दिया। धारा 13(3)(ए) को यहाँ धारा 19(2) के साथ जोड़कर आँका गया और झंडे को फहराने पर पाबंदी को स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अधिकार का हनन माना गया। साथ ही यह भी स्वीकार किया गया कि झंडा संहिता उस सीमा तक वैध है जहाँ वह झंडे के मान और प्रतिष्ठा के संरक्षक की भूमिका का निर्वहन करती है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय तक पहुँचाने के लिए तीन बिंदुओं को आधार बनाया। ये थे (अ) राष्ट्रीय ध्वज का महत्त्व (ब) संविधान सभा में राष्ट्रीय ध्वज अपनाने के समय हुई बहस और (स) अन्य देशों में उनके राष्ट्रीय ध्वज से जुड़े क़ानून। सर्वोच्च न्यायालय ने झंडा फहराने के अधिकार को मूलभूत अधिकार तो माना लेकिन इसे परम अधिकार नहीं माना और कहा कि इसे मौलिक कर्तव्य (धारा 51[ए]) के साथ जोड़कर ही देखा जाना चाहिए।[37]

झंडा फहराने के अधिकार उदार बनाने में सर्वोच्च न्यायालय ने कई बातों का ध्यान रखा जिसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और दूरसंचार के दायरे में झंडे के सार्वजनिक प्रदर्शन को रोक पाने की मुश्किल की तरफ़ भी इशारा है। इसके साथ ही यह भी माना गया कि पहले की पाबंदियों ने लोगों के मन में

---

[34] देखें, दीपेश चक्रवर्ती (1999), 'नैशन ऐंड इमैजिनैशन', *स्टडीज़ इन हिस्ट्री,* खण्ड 15, अंक 2 :177–207.

[35] इन्द्रजीत हाजरा, (2001) 'हूज़ फ़्लैग इज़ इट एनीवे?', *द हिंदुस्तान टाइम्स,* 18 अप्रैल : 2.

[36] *युनियन ऑफ़ इण्डिया बनाम नवीन जिंदल,* उपरोक्त.

[37] धारा 51 (ए) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह (अ) संविधान का पालन करे और संविधान के आदर्शों और संस्थाओं, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान का सम्मान करे. यह संदर्भ भारतीय संविधान के 42वें संशोधन के बाद 18 दिसंबर 1976 में जोड़ा गया.

यह संशय पैदा किया कि राष्ट्रीय ध्वज केवल सरकार के उपयोग के लिए ही है। आम जनता को ध्वज फहराने की छूट केवल चंद मौक़ों तक ही सीमित थी। इससे जनता के एक बड़े हिस्से में पनपे क्षोभ का उल्लेख भी किया गया।

सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर भी बल दिया कि पाबंदियाँ अन्य देशों के झंडा विधान में अपनाये तरीक़ों से मिलती-जुलती भी हों। कुछ देशों और वहाँ के व्यवहारों का उल्लेख भी किया गया। इस सिलसिले में हम पाते हैं कि जहाँ कुछ देश जैसे यूनाइटेड किंगडम जनता द्वारा झंडा को फहराने के मामले में उदार नहीं है, वहीं न्यूज़ीलैंड जैसा देश झंडे के विज्ञापन और व्यावसायिक उपयोग की उस हद तक इजाज़त देता है जहाँ तक उपयोग झंडे की छवि के प्रति निष्ठापूर्ण रहे। संयुक्त राज्य अमेरिका में झंडे को जलाना नागरिकों के बोलने की, सरकार के प्रति विरोध की अभिव्यक्ति का सूचक है। यहाँ यह ध्यान दिलाना उचित होगा कि नवीन जिंदल के मामले में वादी, प्रतिवादी और कोर्ट सभी ने भारतीय संदर्भ को अमेरिका से बहुत अलग भी माना तथा व्यावसायिक उपयोग या जलाये जाने जैसे अतिवादी कृत्य से बचने की ही वकालत की। यहाँ झंडे के उदार उपयोग और उसकी पवित्रता की रक्षा के बीच एक क़िस्म का संतुलन बनाये रखने की कोशिश हम पाते हैं। यह भी गौर करने की बात है कि निर्णय तक पहुँचने के क्रम में न तो झंडे की पवित्रता को परिभाषित या व्याख्यायित किया गया न ही इस बात के तर्क दिये गये कि किन कारणों से झंडे के व्यावसायिक उपयोग या जलाये जाने पर उसकी पवित्रता को ख़तरा हो सकता है।

निर्णय में बल दिया गया कि ध्वज का पवित्र स्वरूप सम्पूर्ण राष्ट्र के आदर्श, आकांक्षा, आशा और उपलब्धियों का प्रतीक है। इसमें अतीत के त्याग और बलिदान के अहम योगदान की बात की गयी। क़ानून के तार्किक लहज़े में यदि पूछा जाये तो यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है कि अतीत की अवमानना क़ानून की नज़र में अपराध क्यों होना चाहिए (दूसरे शब्दों में, अतीत की थाती को क़ानून क्यों संरक्षित रखना चाहता है? क़ानून और अतीत का रिश्ता पेचीदा है और इस दिशा में कोई ख़ास अनुसंधान नहीं हुआ है, लेकिन यहाँ हम इस सिरे के साथ अधिक देर तक नहीं चल सकते)? नैतिक धरातल से परे क़ानून की भाषा में झंडे को जलाना उसकी पवित्रता के ख़िलाफ़ क्यों हो जाता है? लोक छवियों में यह आतंकवादी हरकत कैसे हो जाता है?[38] इस सवाल को बेहतर ढंग से समझने के लिए हमें अमेरिका के मशहूर केस स्टेट ऑफ़ टेक्सास बनाम जॉनसन की तरफ़ रुख़ करना चाहिए।

IV

घटना 1984 की है जब डलास शहर में रिपब्लिकन नैशनल कनवेंशन ने दौरान जार्ज ली जॉनसन ने एक राजनीतिक प्रदर्शन में अमेरिकी झंडा फहराया। प्रदर्शन डलास के सिटी हाल पर ख़त्म हुआ जहाँ जॉनसन ने झंडे में आग लगा दी। जब झंडा जल रहा था प्रदर्शनकारी नारे लगा रहे थे : अमरीका लाल, श्वेत और नीला, हम तुम पर थूकते हैं।[39] जॉनसन पर टेक्सस के *डेसिक्रेशन ऑफ़ अ वेनिरेटिड ऑब्जेक्ट* क़ानून की अवमानना का आरोप लगा। राष्ट्रीय ध्वज को क्षति पहुँचाने की घटना को एक ऐसी ओछी हरक़त माना गया जिससे देखने वाले का मन आहत हो सकता है। जॉनसन को एक साल के कारावास की सज़ा और दो हज़ार डॉलर का जुरमाना हुआ। इस निर्णय को बाद में *टेक्सास कोर्ट*

---

[38] हाल के दो दशकों में भारतीय सिनेमा में यह समीकरण बार-बार आया है. ऐसी ही एक खास छवि के लिए देखें रोजा का अंश 'इनम मारलम' मणिरत्नम निर्देशित *रोजा,* 1992. एचटीटीपी://डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.यूट्यूब.कोम/वाच ?वी=केटह्वी18 बीएमपीबीवाई6के (5/3/2009 को देख गया).

[39] देखें, 'फ़्लैग बर्निंग ऐज़ सिम्बॉलिक स्पीच', *हार्वर्ड लॉ रिव्यू,* 103(137), 1989 : 250.

ऑफ़ क्रिमिनल अपील्स ने उलट दिया और अमेरिकी संविधान के प्रथम संशोधन के विरुद्ध माना। मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा, जिसने अंततः एक विभाजित फ़ैसला जॉनसन के पक्ष में सुनाया। 1989 का यह निर्णय कई मायने में महत्त्वपूर्ण है। यह सार्वजनिक शांति के रखरखाव (पृ. 343), झंडे का जलाया जाना, राजनीतिक विरोध की पहचान (पृ. 343), अभिव्यक्ति की आज़ादी और नागरिक के मूलभूत अधिकार जैसे गम्भीर क्षेत्रों को छूता है। अहम यह भी है कि यहाँ देश और उसके झंडे के बीच अंतर किया गया और कहा गया कि झंडे के प्रति निष्ठा के मामले को देश के प्रति निष्ठा से नहीं उलझाया जा सकता है (पृ. 258)। झंडे को इसके सार्वभौमिक अर्थों में स्वतंत्रता के मूल्यों के प्रतीक के रूप में माना गया (पृ. 252)।[40] जस्टिस ब्रेनन ने निर्णय सुनाते हुए कहा कि पहले संशोधन के पीछे अगर कोई एक सिद्धांत है तो वह यह कि सरकार महज़ इसलिए किसी विचार की अभिव्यक्ति पर रोक न लगाये क्योंकि समाज उस विचार से आहत होता है या असहमत है।[41]

इस निर्णय का एक तार हमारे अध्ययन के लिए केरल में राष्ट्रीय गान से जुड़े एक मसले (*बीजोय इमैनुअल बनाम स्टेट ऑफ़ केरल*) की तरफ़ भी जाता है। झंडा दहन का मामला जहाँ बोलने की आज़ादी को स्थापित करता है, वहीं केरल में राष्ट्र गान का मसला सम्मानजनक तरीक़े से चुप रहने की आज़ादी प्रदान करता है। इस मामले में जेहोवा सम्प्रदाय के तीन बच्चे स्कूल की सभा में राष्ट्रीय गान की वंदना के समय सम्मानपूर्वक लेकिन चुपचाप खड़े रहे। उन्होंने गाना गाने से इनकार कर दिया। जेहोवा मत जेहोवा भगवान के अतिरिक्त किसी दूसरे भौतिक चिह्न के प्रति विश्वास प्रकट करने की इजाज़त नहीं देता। केरल के उच्च न्यायालय ने इन छात्रों के ख़िलाफ़ निर्णय सुनाया और माना कि राष्ट्रीय गान में कोई भी शब्द ऐसा नहीं जो किसी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाए। इस आधार पर यह दलील कि राष्ट्रीय गान का गाया जाना किसी धार्मिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन है ख़ारिज कर दी गयी। यहाँ भी सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय को उलट दिया और माना कि न गाने से राष्ट्रीय गान का कोई अपमान नहीं हुआ। उसने माना कि भारतीय संविधान की धारा 25 विश्वास कि धारा है जो मूलतः इस बात पर टिकी है कि प्रजातंत्र की असल परीक्षा गौण से गौण लगने वाली अल्पसंख्यक पहचान की संविधान में उपस्थिति से है। भले ही वादी का व्यवहार कितना ही अनोखा और विचित्र क्यों न हो, और भले ही कोई ख़ास धार्मिक विश्वास या व्यवहार कोर्ट के तर्क या भावना को अपील करता हो या न करता हो, वास्तविक मुद्दा यह है कि वह विश्वास आमूल रूप में और विवेकपूर्ण तरीक़े से किसी जीवन पद्धति और धार्मिक व्यवहार का हिस्सा है या नहीं।

राष्ट्रीय गान और झंडा दोनों ही नैशनल ऑनर एक्ट के दायरे में आते हैं, और यह दिलचस्प है कि न्यायाधीशों (मुरली मोहन दत्त और चिन्नप्पा रेड्डी) ने अपने निर्णय में पश्चिमी वर्जीनिया के झंडा सलामी के मामलों से उदाहरण दिये जिन पर विस्तार से चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं। महत्त्वपूर्ण यह है कि कोर्ट ने विश्वास के मुद्दे पर बहुलता को तरजीह दी और माना कि कोर्ट को यह तय करने का कोई अधिकार नहीं है कि इन व्यवहारों का धार्मिक या भक्ति संबंधी महत्त्व है या नहीं। कोर्ट ने ख़ुद माना कि उसके द्वारा यह तय करना धार्मिक स्वतंत्रता के संविधान प्रदत्त सिद्धांत के ख़िलाफ़ जाता है।

कोर्ट की यह स्वीकारोक्ति और ऊपर के मामले मेरे लिए न्यायिक विमर्श और प्रशासनिक व्यवहारों के बीच के फ़र्क़ को दर्शाते हैं। प्रसाशनिक दायरे में राष्ट्रीय गान और झंडे की धार्मिकता अनिवार्यतः राज्य के बताये तरीक़े से पालन करने की बात है। कोर्ट ने यद्यपि 51 (ए) को अहम माना लेकिन इस बात पर बल दिया कि राष्ट्रीय गान और झंडा राष्ट्र के मूल उद्देश्य के प्रसार के माध्यम

---

[40] यूएस सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स, *टेक्सस बनाम जॉनसन* (1989) 491 यूएस 397,105एल एड 2डी342,109 एस की टी2533, सारांश, पृ. 342–44, हेड नोट्स पृ. 345–376; *हार्वर्ड लॉ रिव्यू*, उपरोक्त पृ.249–3343.

[41] मर्रे ड्रै द्वारा उल्लिखित, 'फ़्लैग बर्निंग ऐंड द कांस्टीट्यूशन', द *सुप्रीम कोर्ट रिव्यू*, 1990, पृ. 69–103, यहाँ पृ. 82.

हैं स्वयं देश के बराबर नहीं। यहाँ कोर्ट ने मूल्यों की भाषा के लिए व्यापक ज़मीन तैयार की जिसमें मतभेद को शामिल किया गया, बशर्ते वह व्यापक राष्ट्र और जनतांत्रिक मूल्यों के विरोध में न हो। इन मूल्यों को राष्ट्र के प्रतीक से इनके स्वरूपगत नियोजन से अधिक तरजीह दी गयी। इन मामलों में प्रतीक की पवित्रता हर पक्ष (लोग, सरकार और न्यायपालिका) के लिए दलील का मुख्य आधार और उनके शक्ति के स्रोत के रूप में हमारे सामने आती है। लेकिन यह पवित्रता हर एक के लिए भिन्न है और यही मतभेद का कारण भी है। समझने की बात यह है कि लोगों का बड़ा हिस्सा अपने विवेक से राष्ट्र के पवित्र प्रतीक में निष्ठा और उसे एक वस्तु की तरह देखने में कोई फ़र्क़ नहीं करता। यहाँ हम महात्मा गाँधी द्वारा व्यक्त विश्वास की नज़र से संबंधित भाषा की निरंतरता पाते हैं। विश्वास की यह नज़र राजनीति और जीवन के दूसरे क्षेत्रों को एक दूसरे से असम्पृक्त नहीं करती। इसलिए यहाँ राजनीति का उद्देश्य जीवन की ख़ुशहाली है जो विवेक से निर्देशित-परिभाषित होती है। दूसरी ओर अनुशासन के लिए इस विवेक का नियोजन राज्य के अपने अस्तित्व के लिए ज़रूरी हो जाता है। अनुशासन हीन व्यक्तिगत विवेक पर आधारित राजनीतिक जीवन राज्य की राजनीतिक सम्प्रभुता की एकलता के लिए सदैव ही ख़तरा हो सकता है।[42]

आधुनिक राज्य के लिए झंडे की पवित्रता का नियोजन उसी तरह आवश्यक हो जाता है जिस तरह मंदिर के भीतर आने वाले श्रद्धालुओं के विश्वास और उनकी गतिविधियों का नियोजन मंदिर प्रशासन और आधुनिक राज्य दोनों के लिए अपरिहार्य होता है जिसके बारे में अर्जुन अप्पादुरै ने अध्ययन किया है। जिस तरह हर कोई देव प्रतिमा नहीं रख सकता, उस पर स्वामित्व नहीं जमा सकता, महज़ उसे दूर से देख सकता है, उसी तरह राष्ट्रीय झंडे में विश्वास, उसके दूर से दर्शन की इजाज़त और झंडे पर स्वामित्व के बीच फ़र्क़ राज्य के लिए अपरिहार्य बना रहा। राज्य के लिए झंडा सार्वजनिक जगहों पर राष्ट्र की सम्प्रभुता को धारण करने वाली एक वस्तु थी, जिसका उत्पादन तकनीकी रूप से भारत के मानक के निर्देशों का पालन करता हो। इस पर हम शुरू में चर्चा कर चुके हैं। यहाँ यह महज़ एक पवित्र प्रतीक नहीं रह जाता। राज्य के निर्देश अपनी इसी सम्प्रभुता की रक्षा के लिए लागू किये गये। इसलिए एक सामान्य नियम, झंडे और लोगों के बीच के संबंध का निर्वैयक्तिक होना ज़रूरी माना गया। राज्य वस्तुत: नागरिकों को झंडा राज्य की ही नज़र से उसी की शर्तों पर ही देखने की इजाज़त दे रहा था। लेकिन न्यायपालिका के लिए लोगों का अनुशासन और विश्वास दोनों महत्त्वपूर्ण थे। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में दिखाया कि अनुशासन का प्रश्न उसके लिए झंडे की पवित्रता की रक्षा भर का सवाल था (बिना अवमानना के झंडे का उदार उपयोग)। कोर्ट के लिए अनुशासन का सवाल सार्वजनिक जगहों पर इस पवित्र वस्तु के प्रगुणन या इसके वितरण के नियोजन का कतई नहीं था। लोगों के विवेक के संरक्षणकर्ता के रूप में कोर्ट अर्थों की एकलता और बहुलता के पचड़े में नहीं पड़ना चाहता था। इसके लिए एकल और बहुल की सह-उपस्थिति किसी तरह घटक नहीं थी जब तक कि वे एक दूसरे की क्षति नहीं करते। इसलिए न्यायपालिका के लिए विश्वास की नज़र को सेकुलर राष्ट्र के लिए ख़तरे के रूप में देखने की कोई वजह नहीं थी।

इस पूरी प्रक्रिया में प्रतीक न केवल नये अर्थ ग्रहण करता मिलता है, बल्कि साथ ही उनकी तरफ़ देखने वाली नजर भी परिमार्जित होती प्रतीत होती है। लोगों के लिए मूल्य पवित्र थे, लेकिन वे उन कर्मकांडों को भी करना चाहते थे जो उनके दैनिक जीवन से झंडे को जोड़ सकें। वे अपने दैनिक जीवन में झंडे की उपस्थिति चाहते थे, और झंडे को हमेशा राज्य के बताये नियमों में बँध कर

[42] राजनीति की सीमा क्या हो? इस मुद्दे पर दीपेश चक्रवर्ती 1955 में नेहरू के वक्तव्यों का हवाला देते हैं. नेहरू ने तब कहा था कि मैं राजनीति से ऊब गया हूँ। पचास के दशक में नेहरू के लिए राष्ट्र के उद्देश्य अधिक ज़रूरी थे। देश के पुनर्निर्माण में नेहरू इंजीनियरों और वैज्ञानिकों को चाहते थे जो उनके लिए मंत्रियों से अधिक महत्त्व रखते थे। दीपेश चक्रवर्ती (2005).

नहीं फहराना चाहते थे। अपने और झंडे के बीच वे राज्य की मध्यस्थता नहीं चाहते थे। वे झंडे की धार्मिकता को अपने विश्वास की नज़र से देखना चाहते थे, अपनी शर्तों पर।

1998 के स्वतंत्रता दिवस पर उड़ीसा की एक स्वयंसेवी संस्था पश्चिम उड़ीसा कृषिजीवी संघ ने बोलंडी जिले के कुर्लुभाटा गाँव के कान्धा आदिवासियों के बीच झंडा फहराने का कार्यक्रम आयोजित किया। इस समारोह में ब्रज बंधू भोय ने झंडे के स्तंभ की जड़ में नारियल फोड़ कर पूजा की और बुदबुदा कर कहा : 'वर्षा के देव, अब ढाई एकड़ खेत में कुछ फसल दे दे।' इसी तरह कालाहाँडी जिले के बुर्कानी गाँव के बुज़ुर्ग 55 वर्षीय सदानंद माझी (गोंड आदिवासी) विस्मित थे, जब उन्हें झंडोत्तोलन के लिए ले जाया गया। झंडे से गिरते फूलों को देखते हुए वे बोले, 'क्या यह हमें बारिश और खाना देगा?'[43]

V

इस निबंध में झंडे को देखने से जुड़े भिन्न-भिन्न दावों की प्रकृति और उनकी राजनीति को समझने का प्रयास किया गया है। मेरा ख़याल है कि इन दावों का स्वरूप एक ओर आधुनिक राष्ट्र-राज्य की सम्प्रभुता की ऐक्यता और जनमानस के बीच इस ऐक्यता को परिभाषित करने, उसके प्रदर्शन तथा उसे नियोजित करने की ज़रूरत से तय होता है; वहीं दूसरी ओर इस सम्प्रभुता और इसके प्रदर्शन की शर्तें जनता अपनी तरह से तय करने की कोशिश करती है। जनता के भिन्न-भिन्न समूह अलग तरीक़े से सम्प्रभुता और राष्ट्र के चिह्न को अपने व्यवहारों में उतारते हैं क्योंकि उनके लिए इन्हें देखने का व्याकरण भिन्न है। वे हमेशा उसी लहज़े में सम्प्रभुता और राष्ट्र के संकेत झंडे में नहीं देखते जिस लहज़े में आधुनिकता ने राज्य को परिभाषित किया है और राज्य के संकेत चिह्नों को देखने की शर्तें तय की हैं। जनता के देखने का अंदाज़ संस्कृति से प्रभावित होता है जिसमें पवित्रता और धार्मिकता का काफ़ी गहरा असर रहता है। यही पवित्रता राज्य के संयोजनकारी व्याकरण को तहस-नहस कर देती है। राज्य का संयोजनकारी तंत्र और उसकी भाषा आधुनिकता और विज्ञान से संरचित है। इसकी बुनियाद में गवर्नेंस का वह बीज निहित है जिसके लिए यह अनिवार्य है कि वह किसी बिम्ब, चिह्न या वस्तु में निहित मूल्य को इस तरह से परिभाषित करे कि उसे नियोजित किया जा सके। ऐसे में पवित्रता या धार्मिकता, जो हमेशा ही नियोजित सम्प्रेषणीयता के दायरे से बाहर जाती है और जिसे वैज्ञानिक तरीक़े से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है, राज्य और उसके सरकारीकरण के लिए चुनौती बनकर सामने आती है। पर यहाँ मैंने यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि यही धार्मिकता न्यायपालिका के लिए असहजता नहीं ले कर आती। संविधान के प्रति निष्ठावान क़ानून के लिए धार्मिकता के नियोजन से बड़ा सवाल इसकी रक्षा करना है।

इस तरह झंडा देखने की परिपाटी और विमर्श में हम तीन भिन्न-भिन्न वृत्तों (जन मानस, राज्य और न्यायपालिका) से रूबरू होते हैं जिनके रूपक, भाषा और सरोकार भिन्न हैं और जो हमें देखने की संस्कृति की विविधता की ओर ले जाते हैं।

---

[43] *द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया,* दिल्ली, 21 अगस्त 1998: 1.

संदर्भ

अर्जुन अप्पादुरै (1981), *वरशिप ऐंड कंट्रोल अंडर कोलोनियल रूल : अ साउथ इंडियन केस,* ओरियंट लोंगमेन, हैदराबाद.

——(सम्पा.) (1998), *द सोशल लाइफ ऑफ़ थिंग्स : कमोडिटीज़ इन कल्चरल पर्सपेक्टिव,* कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज.

अरुंधती विरमानी (1999), 'नैशनल सिम्बल्स अंडर कोलोनियल डोमिनैशन द नैशनलाइज़ेशन ऑफ़ द इंडियन फ़्लैग मार्च-अगस्त 1923', *पास्ट ऐंड प्रेजेंट,* अंक 164.

—— (2008), *अ नैशनल फ़्लैग फार इण्डिया : रिचुअल्स, नैशनलिज़म, ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ सेंटिमेंट,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

आशिस नंदी (1998), 'दि पॉलिटिक्स ऑव सेकुलरिज़म ऐंड द रिकवरी ऑफ़ द रिलीजस टॉलरेंस', राजीव भार्गव (सम्पा.) (1998), *सेकुलरिज़म ऐंड इट्स क्रिटिक्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

इन्द्रजीत हाजरा (2001), 'हूज़ फ़्लैग इज़ इट ऐनी वे?', द *हिंदुस्तान टाइम्स,* 18 अप्रैल.

कार्ल फेचिंगेर, एक जर्मन नागरिक द्वारा भारत के झंडा और प्रतीकों के अध्ययन करने में सहायता और अनुमति देने का आवेदन जिसे रद्द कर दिया गया, 1949/14(7) जे (मिनिस्ट्री ऑफ़ स्टेट).

जियोर्जियो आगम्बेन (1993), *इन्फेंसी ऐंड हिस्ट्री : एसेज़ ऑन द डिस्ट्रक्शन आफ एक्सपीरियेंस,* अनुवाद, लीज हेरोन, वर्सो, लन्दन और न्यूयॉर्क.

गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया (2005), द प्रिवेंशन ऑफ़ इंसल्ट टु नैशनल ऑनर (अमेंडमेंट) एक्ट 2005; (1971), द प्रिवेंशन ऑफ़ इंसल्ट टु नैशनल ऑनर एक्ट, 1971; (2005), (द प्रिवेंशन ऑफ़ इंसल्ट टु नैशनल ऑनर (अमेंडमेंट) एक्ट 2005 द्वारा संशोधित).

दिनमान (1978), 'तिरंगा किसका है?', 12-18 फरवरी 1978, दिल्ली.

दि कांस्टीट्युटेंट एसेम्बली ऑफ़ इंडिया डिबेट्स (प्रोसीडिंग्स) (1947), अंक 4, 22 जुलाई.

दि टाइम्स ऑफ़ इण्डिया (1998), दिल्ली, 21 अगस्त.

दीपेश चक्रवर्ती (1999), 'नैशन ऐंड इमेजिनैशन', *स्टडीज़ इन हिस्ट्री,* खण्ड 15, अंक 2.

—— (2000), *प्रोविंसियलाइज़िंग यूरोप : पोस्टकोलोनियल थॉट ऐंड हिस्टोरिकल डिफरेंस,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन और ऑक्सफ़र्ड.

—— (2008), 'द पॉवर ऑफ़ सुपरस्टीशन इन पब्लिक लाइफ इन इंडिया', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 43, अंक 20.

धनंजय कीर (1990), *डा. आम्बेडकर : लाइफ ऐंड मिशन,* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई.

'नॉट चरखा बट चक्र ऐंड अ भगवा स्ट्रिप (7/7/1947)' (1967), *हिस्टोरिक स्टेटमेंट्स,* एस.एस. सावरकर वी.डी. सावरकर के लिए, कर्नाटक प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई.

नैशनल आर्काइव, दिल्ली, पॉलिटिकल डिपार्टमेंट और मिनिस्ट्री ऑफ़ स्टेट : 1947/4(14)-पी.आर.; 1947/4(8)-पी.आर.(एस); 1947/4(12)- पी.आर.; 1947/120- पी.आर.; 1947/83 पी.आर.; 1947/25-जी; 1947/20(28) पी.आर.; 1952/जी11/8154 (मिनिस्ट्री ऑफ़ एक्सटर्नल अफेयर्स); 1952/जी-II/8152 (मिनिस्ट्री ऑफ़ एक्सटर्नल अफ़ेयर्स); 1952/ जी-II/8155; मेन्युफेक्चर ऑफ़ नैशनल फ़्लैग,1952/ जी-II /8155 पार्ट II; *रेगुलेशंस ऐंड रूल्स रिगार्डिंग द फ्लाईंग ऑफ़ द नैशनल फ़्लैग ऑफ़ इण्डिया,*1952/जी-II /8151; 1952/ऐन/8151/103; होम/1950/41/6/पब्लिक; होम/1950/ए841/8/पब्लिक (यह यूनियन जैक के डिस्पोज़ल के बारे में है); होम/1951/जनरल/24/31/पब्लिक.

पीटर वान डर वीर (1996), *रिलीजस नैशनलिज़म : हिंदूज़ ऐंड मुस्लिम्स इन इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिविर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

पैट्रीशिया ओबेरॉय (2002), 'यूनिटी इन डायवर्सिटी? डिलेमा ऑफ़ नैशनहुड इन इंडियन कलेंडर आर्ट', सुमति रामस्वामी (सम्पा.), *बियांड एक्सपीरिएंस? विजुअल प्रेक्टिसिज़ ऐंड आइडियॉलॅजीज़ इन मॉडर्न इंडिया,* कंट्रीब्यूशंस टु इंडियन सोशियोलॅजी, विशेषांक, 36, अंक 1 और 22.

बर्नार्ड कोह्न (2004),'क्लोथ, क्लोथ्स, ऐंड कोलोनियलिज़म : द ब्रिटिश इन इण्डिया', *बर्नार्ड कोहेन ओमनीबस,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

भारतीय झंडा संहिता, 2002. http://mha.nic.in/pdfs_jhanda-hindi.pdf.

भारत के राष्ट्रीय झंडे (सूती खादी) की विशिष्टि (दूसरा पुनरीक्षण)(संशोधन सं.1 और 2 समाविष्ट) (1987 में पुनःपुष्ट) यूडीसी 929 9 (540):677,21.064, *भारतीय मानक ब्यूरो,* दिल्ली, मार्च 1991.

मर्रे ड्रै (1990), 'फ़्लैग बर्निंग ऐंड द कांस्टीट्यूशन', द *सुप्रीम कोर्ट रिव्यू.*

महात्मा गाँधी (1918), 'लेटर टु पैट्रिक गेडिस', 12 अप्रैल, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी* , खण्ड 14.

—— (1966), 'नैशनल एजुकेशन', *यंग इण्डिया,* 3/6/1926, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी,* 30: 519 (मेरा अनुवाद), पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

—— (1966), 'गोड्स विल', *हरिजन,,* 24/4/1940 *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी,* 78: 164, पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

—— (1966), 'नैशनल एजुकेशन', *यंग इण्डिया,* 3/6/1926, *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ महात्मा गाँधी,* 30: 519, पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

यूनियन ऑफ़ इंडिया बनाम नवीन जिंदल, सिविल अपील नं. 2920 ऑफ़ 1996 नं. 453 ऑफ़ 2004 के साथ [एस एलपी (सी) नं. 15849 ऑफ़ 1994 से निकला हुआ], 23 जनवरी 2004 को तय किया गया, सुप्रीम कोर्ट केसेज़, 2, 2004, पृ. 510. साथ ही देखें द एम्बलम्स ऐंड नेम्स (प्रिवेंशन ऑफ़ इम्प्रोपर यूज़) एक्ट 1950 [एक्ट नं.12 ऑफ़ 1950], मार्च 1, 1950.

रणजीत गुहा (1983), 'द प्रोज़ ऑफ़ काउंटर इंसरजेंसी', रणजीत गुहा (सम्पा.) *सबाल्टर्न स्टडीज़ II*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

राजीव भार्गव (सम्पा.)(1998), *सेकुलरिज़म ऐंड इट्स क्रिटिक्स,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

लेफ्टिनेंट कर्नल के.वी. सिंह (1991), *अवर नैशनल फ़्लैग,* पब्लिकेशन डिवीज़न, दिल्ली.

शाहिद अमीन, (2005), 'रिप्रज़ेंटिंग द मुसलमान : देन ऐंड नाव, नाव ऐंड देन', शैल मायाराम, एम.एस.एस. पांडियन, अजय सकारिया (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़ XII* : मुस्लिम्स, दलित्स ऐंड द फेब्रिकेशंस ऑफ़ द हिस्ट्री, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली.

श्रीरूपा राय (2006), 'ए सिम्बल ऑफ़ फ्रीडम : द इंडियन नैशनल फ़्लैग ऐंड द ट्रांसफ़रमेशन ऑफ़ नैशनलिज़म : 1906-2002', द *जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडीज़,* खण्ड 65, अंक 3.

सदन झा (2008), 'द इंडियन नैशनल फ़्लैग : अ साइट ऑफ़ डेली प्लेबिसाइट', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खंड 43, अंक 43.

हार्वर्ड ला रिव्यू (1989), 'फ़्लैग बर्निंग ऐज़ सिम्बॉलिक स्पीच', 103(137).